IAS

GS WORLD

Committed To Excellence

PCS

आलेख सार

अंक – 5

संपादकीय Analysis 360°

एक कदम, सफलता की ओर।।।

प्रिय अभ्यर्थियों!

जैसा कि आप जानते हैं, कि जी०एस० वर्ल्ड प्रबंधन पिछले कुछ वर्षों से लगातार आपके अध्ययन सामग्री की गुणवत्ता संवर्धन हेतु सतत प्रयासरत है, जिसके लिए दैनिक स्तर पर अंग्रेजी समाचार पत्रों का सार एवं जीएस वर्ल्ड टीम द्वारा सहायक सामग्री उपलब्ध करायी जाती है। साथ ही साप्ताहिक स्तर पर हिन्दी समाचार पत्रों का सार उपलब्ध कराया जाता था, किंतु सिविल सेवा परीक्षा के बढ़ते स्तर एवं बदलते प्रश्नों को देखते हुए जीएस वर्ल्ड प्रबंधन ने साप्ताहिक समाचार पत्रों के सार के स्थान पर अर्द्धमासिक स्तर पर संपादकीय Analysis 360° आरंभ किया है।

संपादकीय Analysis 360° में नया क्या है?

- इसमें महत्वपूर्ण मुद्दों पर विभिन्न हिन्दी समाचार पत्रों में आए संपादकीय लेखों का सार उपलब्ध कराया जा रहा है।
- इन संपादकीय लेखों को समग्रता प्रदान करने के लिए इनसे जुड़ी सभी बेसिक अवधारणाओं को जीएस वर्ल्ड टीम द्वारा उपलब्ध कराया जा रहा है।
- इन मुद्दों से संबंधित 2013 से अब तक सिविल सेवा परीक्षा में पूछे गए प्रारंभिक एवं मुख्य परीक्षा के प्रश्नों को भी नीचे दिया गया है, जिससे अभ्यर्थी उस मुद्दे से जुड़े प्रश्नों को समझ सके।
- इन मुद्दों से संबंधित संभावित प्रश्नों को भी इन आलेखों के साथ दिया गया है, जिसका अभ्यास अभ्यर्थी स्वयं कर संस्थान में अपने उत्तर की जांच भी करा सकते हैं।

जीएस वर्ल्ड प्रबंधन आपके उज्ज्वल एवं सफल भविष्य के लिए प्रतिबद्ध है।।।

नीरज सिंह
(प्रबंध निदेशक, जीएस वर्ल्ड)

"शी चिनफिंग चीन के आजीवन राष्ट्रपति)"

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (अंतर्राष्ट्रीय संबंध) से संबंधित है।

हाल ही में चीन ने संविधान संशोधन करके शी चिनफिंग को चीन का आजीवन राष्ट्रपति घोषित कर दिया। चीनी कम्यूनिस्ट पार्टी के इस प्रस्ताव को पूरी दुनिया में गंभीरता से लिया जा रहा है। इस मुद्दे से संबंधित हिन्दी समाचार पत्र नवभारत टाइम्स, बिजनेस स्टैंडर्ड एवं दैनिक ट्रिब्यून प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे जी.एस. वर्ल्ड टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

वैश्विक महाशक्ति बनने की महत्वाकांक्षा

(दैनिक ट्रिब्यून)

क्या चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग सर्वशक्तिमान सम्राट के रूप में स्थापित हो गए हैं? यह प्रश्न दबी जुबान से चीन के भीतर और मुखरता के साथ विश्व के लोकतांत्रिक देशों में उठने लगा है। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की 19वीं कांग्रेस में 7-सदस्यीय पोलित ब्यूरो स्टैंडिंग कमेटी ने 1980 से चली आ रही उस संवैधानिक व्यवस्था को शिथिल कर दिया है, जिसके अनुसार कोई भी चीनी राजनेता अधिकतम दो कार्यकाल तक राष्ट्रपति रह सकता है। शी का दूसरा कार्यकाल इस वर्ष पूर्ण हो रहा है। पोलित ब्यूरो के ऐतिहासिक निर्णय की इसी महीने होने जा रही नेशनल पीपुल्स कांग्रेस के सत्र में औपचारिक पुष्टि हो जाना निश्चित है। चूंकि शी के नेतृत्व में चीन ने आर्थिक और सामरिक क्षेत्रों में ऐतिहासिक विकास किया है, इसलिए इन्हीं के माध्यम से अमेरिका के स्थान पर चीन के विश्व की सर्वोच्च शक्ति बनने की कामना को पूरा करने के लिए यह बड़ा फैसला लिया गया है।

शी अब माओत्से तुंग के बाद चीन के सर्वशक्तिमान नेता बन जाएंगे। इस मुद्दे पर व्यापकता से विमर्श करते हुए द साउथ चाइना मॉर्निंग पोस्ट ने लिखा है, 'इस साहसी निर्णय से संदेश जाएगा कि शी के द्वारा चीन की वैश्विक महाशक्ति बनने की महत्वाकांक्षा को मजबूती मिलेगी और अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के कारण जो शून्य निर्मित हुआ है, वह भरा जा सकेगा।' चीन की राजनीति पर नजर रखने वालों का मानना है कि दूर-दूर तक कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखता जो 2023 में भी शी जिनपिंग को चुनौती दे सके। फिर भी राजनीति में न सही, चीन की जनता के आंखों में खुलेपन का जो सपना कुनमुना रहा है, वह कुछ चुनौतियां खड़ी कर सकता है। चीन की घरेलू और वैश्विक नीतियों को लेकर भीतर और बाहर से जिस उफान के संकेत मिल रहे हैं, उनसे शी के लिए समस्याएं खड़ी होना संभावित है। द हांगकांग अखबार में छपे ब्योरे के अनुसार आम धारणा बन रही है कि आने वाले कुछ वर्ष चीन के लिए भारी उथलपुथल से भरे होंगे।

पड़ोसी मुल्क चीन के उदय के अंत का आरंभ

(बिजनेस स्टैंडर्ड)

चीन में राष्ट्रपति शी चिनफिंग द्वारा राष्ट्रपति पद के कार्यकाल की अवधि सीमा समाप्त करने के प्रस्ताव के बाद जिन शब्दावलियों को सेंसर कर दिया गया उनमें 'मैं असहमत हूं' भी शामिल है। यानी शी चिनफिंग राष्ट्रपति पद पर बने रहने के लिए जन समर्थन जुटाने के क्रम में इस हद तक जा सकते हैं। चीन में नैशनल पीपुल्स कांग्रेस के प्रतिनिधियों ने रविवार को पेइचिंग में अपनी सालाना बैठक की जिसमें संविधान संशोधनों को मंजूरी दी गई। ये संशोधन शी चिनफिंग को उस स्थिति में पहुंचा देंगे जिसमें एक समय माओ त्से तुंग थे और जिसमें रहना तंग श्याओ फिंग को गवारा नहीं था या जिससे वह बचते रहे।

उसके साथ ही तंग श्याओ फिंग का दौर आधिकारिक तौर पर समाप्त हो जाएगा। शायद तब चीन के उदय के अंत की शुरुआत की आशंका भी पहले की तुलना में ज्यादा होगी। चीन के उदय के अंत को लेकर समय-समय पर लिखा भी गया है और गलत भी साबित हुआ है लेकिन चाहे जो भी इन लेखों ने गॉर्डन चांग जैसे चीन विरोधी अमेरिकी स्तंभकारों को प्रसिद्धि भी दी है और अमीर भी बनाया है। बहरहाल, मैं यहां कोई अनुमान नहीं प्रस्तुत कर रहा हूं। बल्कि मेरा लक्ष्य है आपको चीन के पराभव के बढ़ते जोखिम से अवगत कराना।

चीन की जबरदस्त राजनीतिक प्रगति और भूराजनैतिक उभार के धीमे पडने या उसके पराभव की आशंका की सबसे बड़ी वजह यह है कि शी चिनफिंग तंग श्याओ फिंग की सफलता के सूत्रों से नाता तोड़कर उन नीतियों को अपना रहे हैं जिनमें माओ त्से तुंग नाकाम रहे थे। नेतृत्व परिवर्तन की संस्थागत प्रक्रिया का त्याग करना उसी कड़ी का सबसे नवीनतम उदाहरण है।

तंग के इतिहास के पाठ और माओ की त्रासद शासन शैली, जिसके कारण चीन को भयंकर कष्ट सहना पड़ा, करीब 3 करोड़ लोगों की मौत हुई और चीन का प्रति व्यक्ति जीडीपी भारत से भी कम रहा, उन्हें अपनाने के क्रम में वह लोकतांत्रिक व्यवस्था और एक व्यक्ति के शासन में संतुलन कायम करने की जद्दोजहद में रह गए।

GS World
Committed To Excellence

वाशिंगटन से मिली त्वरित प्रतिक्रिया में कहा गया है कि शी को चीन की सत्ता में बनाए रखने का हड़बड़ी में जो निर्णय लिया गया है, वह उसकी भीतरी चिंताओं और चुनौतियों की ओर से ध्यान बंटाने का प्रयास है। एक शीर्ष अमेरिकी कमांडर ने कहा है कि जिस सर्वस्वीकृत वैश्विक व्यवस्था के तहत चीन ने बड़ी प्रगति की है, वह अब उसी को अपनी इच्छा से पुनर्निर्धारित करना चाहता है। अमेरिकी साइबर कमांड के प्रमुख एडमिरल माइकेल एस. रोजर्स ने मंगलवार को सीनेट की सशस्त्र सेवाओं की समिति के सामने दी गई अपनी गवाही में कहा है कि शी जिनपिंग अपने आर्थिक और डिप्लोमेटिक हितों को हासिल करने के लिए उन तमाम नियमों को तिलांजलि देने की बौखलाहट में हैं जो उन्हें अपने अनुकूल नहीं दिखते। साइबर डकैती के नियंत्रण के लिए शी और अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा में 2015 में जो सहमति बनी थी, चीनी राष्ट्रपति अब उसे भी धता बता देना चाहते हैं।

शी जिनपिंग ने जिन आक्रामक नीतियों को दक्षिण चीन सागर और हिन्द-प्रशांत सागर में अपनाया था, उन्हें अब नयी गति दिये जाने की आशंका भारत, जापान, दक्षिण कोरिया, अमेरिका और आस्ट्रेलिया में बलवती हो गई है। जिस तेजी के साथ शी के नेतृत्व ने इन समुद्री क्षेत्रों में सैन्य स्थापनाएं निर्मित की थीं, उन्हें लेकर ताजा आशंकाएं पैदा हो गई हैं। भारत के लिए डोकलाम जैसे नए विवाद खड़े किये जाने का संकट भी बढ़ गया है। अपनी विस्तारवादी नीति के तहत शी भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र तिब्बत में नयी सैन्य स्थापनाएं खड़ी करके संघर्ष को हवा दे सकते हैं लेकिन शी जिनपिंग के लिए अपनी प्रभुता का तेजी से विस्तार बहुत निरापद भी नहीं है।

चीन में ही उनके विरुद्ध आहत फौजी जनरलों और महत्वाकांक्षी नेताओं द्वारा चुनौतियां पेश होने की अटकलों को सिरे से खारिज नहीं किया जा सकता। पश्चिमी और भारतीय उपमहाद्वीप के रणनीतिक विशेषज्ञों का कहना है कि चीन के संरक्षण का छत्र उठा कर पाकिस्तानी नेतृत्व एक बड़े संकट की तरफ फिसल सकता है। 'वह दिन भी आ सकता है जब अधिनायकवादी चीन किसी दिन तिब्बत की तरह उसे भी हड़प ले।' जिस प्रकार से चीन ने अपने मुस्लिम बहुल शिन ज्यांग प्रांत के नागरिकों की इस्लामी पहचान को रफता-रफता मिटा दिया है, वैसा ही वह उस प्रांत से सटे पाक अधिकृत कश्मीर के नागरिकों के साथ भी किसी दिन कर सकता है।

चीन की शह पर पाकिस्तान और मालदीव के सत्ताधारियों में भारत को आंखें तरेरने की प्रवृत्ति बढ़ सकती है। इसका प्रथम संकेत मालदीव के तानाशाह अबदुल्लाह यामीन ने गत दिनों उस समय दे दिया जब उसने 16 देशों की नौसेनाओं के संयुक्त अभ्यास में शामिल होने के भारत के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। इससे पूर्व मालदीव के न्यायाधीशों और प्रतिपक्षी राजनेताओं की रिहाई के लिए भारत द्वारा की गई पेशकश को भी नजरअंदाज कर दिया था। चीन के प्रश्रय के बिना यामीन में इतनी हिम्मत नहीं हो सकती थी। वैसे अब तक उस

वह कम्युनिस्ट पार्टी के अधीन चीन में एक दलीय शासन चाहते थे। सन 1989 में थ्येन आन मन चौक पर घटी घटना इसका उदाहरण है। परंतु इसके समांतर वह एक सामूहिक नेतृत्व के हिमायती थे जहां अधिकारों का बंटवारा हो और एक दूसरे के काम पर निगरानी रखते हुए संतुलन भी हो लेकिन हित और मानक साझा हों। सिंगापुर के नेता ली कुआन यू को वैटिकन की यह व्यवस्था पसंद थी जहां कार्डिनल यह तय करते थे कि कौन उन पदों पर आएगा और फिर उनमें से एक को पोप के रूप में चुन लिया जाता।

अन्य लोग व्यवस्था के बारे में चाहे जो भी सोचें लेकिन चीन के लिए यह सन 1979 से 2010 तक कारगर रही। यही वह दौर था जब पार्टी के पहले ऐसे महासचिव को चुनने को लेकर भयंकर आंतरिक संघर्ष हुआ जिसे तंग द्वारा नहीं चुना गया था। जिन लोगों ने परिवार के मुखिया के निधन के बाद वहां छिडने वाले पारिवारिक विवादों को करीब से देखा होगा उनके अंदाजा होगा कि यह कैसे होता है। यहां फर्क बस इतना है कि इस मामले में पारिवारिक साम्राज्य का विभाजन संभव नहीं था।

शी चिनफिंग ने इस कांपती हुई व्यवस्था को संभालने और सहारा देने के बजाय इसे ध्वस्त करने का निर्णय लिया। उन्होंने यह काम जिस ढंग से किया वह भी माओ की याद दिलाता है न कि तंग की। कठोर नियंत्रण, शीर्ष पार्टी नेताओं को बंदी बनाना और उनके परिवार के सदस्यों पर अत्याचार करना ऐसे ही कुछ तरीके हैं।

फोर्डम लॉ स्कूल के प्रोफेसर कार्ल मिंज्नर की एक नई किताब में कहा गया है कि चीन के आर्थिक सुधार को परिभाषित करने वाले तमाम संकेतक अब गिरावट पर हैं। ये हैं स्थिरता, संस्थागत पार्टी शासन, उच्च आर्थिक वृद्धि और शेष विश्व के प्रति खुलापन।

उनके नजरिये में चीन एक सुधार विरोधी युग में प्रवेश कर रहा है जहां राजनीतिक शक्ति एक व्यक्ति के हाथों में केंद्रित है, अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर धीमी हो रही है और परिसंपत्ति वर्ग में उतार-चढ़ाव का दौर है और सुधारों की जगह एक जातीय-राष्ट्रवादी बहस ने ले ली है। श्री मिंज्नर कहते हैं कि संभव है चीन किसी चौराहे पर न हो। बल्कि वह गिरावट के चक्र का शिकार भी नजर आ सकता है। नरम अधिनायकवादी शासन आगे चलकर धीरे-धीरे कहीं अधिक कठोर अधिनायकवादी शासन में तब्दील हो सकता है। यह आगे चलकर लोकलुभावन राष्ट्रवाद का रूप भी ले सकता है।

चीन के उदय का अंत, आवश्यक नहीं कि चीन के पराभव की भी शुरुआत हो। अगर चीन के प्रदर्शन में पूरी तरह गिरावट नहीं आती है तो भी यह तय है कि अनुकूल बाहरी परिस्थितियां अब पहले जैसी नहीं रहेंगी। मिसाल के तौर पर पश्चिमी देशों ने चीन के उदय में जमकर निवेश किया था। उन्हें उम्मीद थी कि इससे चीन को अंतरराष्ट्रीय समुदाय में लाने में मदद मिलेगी। ट्रंप की संरक्षण

GS World
Committed To Excellence

संयुक्त नौसेना अभ्यास में मालदीव की हठधर्मी से न कोई फर्क पड़ा है, न ही पड़ने वाला है।

चीन की हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में बढ़ती सैन्य उपस्थिति के दृष्टिगत इस सामूहिक नौसेना अभ्यास का विशेष महत्व है। इस 13 मार्च तक चलने वाले इस संयुक्त नौसेना अभ्यास पर चीन के प्रतिद्वंद्वी अमेरिका और जापान सहित अन्य देशों की पैनी नजर रहेगी। मालदीव की भांति चीन ने श्रीलंका को भी अपने प्रभाव क्षेत्र में लाने के लिए वहां के सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हंबनटोटा बंदरगाह को 90 वर्षों की लीज पर लेकर भारत की घेरेबंदी को और मजबूत किया है। फिर भी भारत के लिए थोड़ी-सी राहत की बात यह है कि इसी सप्ताह श्रीलंका के नौसेना प्रमुख ने हमारे देश में दिये एक व्याख्यान में विश्वास दिलाया है कि हंबनटोटा पर उनकी नौसेना का प्रभुत्व बना रहेगा और उसे चीन द्वारा भारत के विरुद्ध इस्तेमाल नहीं करने दिया जाएगा।

चीनी मामलों के विशेषज्ञों का मानना है कि जिस अधिनायकवाद का राजमुकुट शी जिनपिंग ने धारण किया है, वह किसी भी दिन हालात के करवट लेने के बाद उनके गले का फंदा भी बन सकता है। भारत-चीन संबंधों के विशेषज्ञ क्लॉड अर्पी का तो यहां तक कहना है कि शी 21वीं सदी का नेपोलियन बनने की जिस राह पर चल पड़े हैं, वह उन्हें कभी भी किसी तख्ता पलट के बाद क्विनचेंग की कारा अथवा दक्षिण चीन सागर के सेंट हेलन द्वीप में जीवन की अंतिम सांस तक के लिए पहुंचा सकती है।

ावादी कारोबारी नीतियां और राजनीतिक और सुरक्षा ढांचे में इस क्षेत्र को लेकर उत्साह चीन के दबदबे को संतुलित करने का प्रयास है जो चीन की नीतिगत गुंजाइश को सीमित करेगा। इस बीच घरेलू सामाजिक हालात पर धीमी वृद्घि दर का प्रभाव पड़ेगा। विनिर्माण, निर्माण, अचल संपत्ति और बुनियादी ढांचा उद्योग पहले की तरह तेजी से नहीं विकसित हो रहे। एक हालिया रिपोर्ट के मुताबिक चीन अपनी निर्यात आधारित वृद्घि के चरम तक पहुंच चुका है और अब वह आंतरिक खपत पर अधिक ध्यान केंद्रित कर रहा है वह भी बिना वृद्धि को कम किए।

इससे रोजगार और सामाजिक स्थिरता को खतरा उत्पन्न हो सकता है। इसके अलावा अधिकारविहीन वामपंथी दलों के धड़े भी समाप्त नहीं होंगे। वे गुप्त रूप से काम करेंगे। इतना ही नहीं ऑनलाइन राष्ट्रवाद जो एक व्यापक आबादी से जुड़ा हो वह नेतृत्व को उतनी सहजता नहीं देगा कि वह जातीय अल्पसंख्यकों, क्षेत्रीय विवादों या विदेशी मामलों से जुड़े मुद्दों को सहजता से हल कर सके। चीन से जुड़े जोखिम बढ़ रहे हैं। चीन में कारोबार करने वालों को भी अप्रत्याशित हालात के लिए तैयार रहना चाहिए। वहां श्रमिक अशांति से लेकर स्वामित्वहरण और राष्ट्रवादी उभार तक तमाम बातें सामने आ रही हैं। व्यापारिक संघर्ष और अवांछित सैन्य संघर्ष भी देखने को मिल सकते हैं।

आजीवन राष्ट्रपति (नवभारत टाइम्स)

चीनी कम्यूनिस्ट पार्टी के इस प्रस्ताव को पूरी दुनिया में गंभीरता से लिया जा रहा है कि राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री पद पर किसी व्यक्ति के लगातार बने रहने की दो कार्यकाल वाली मौजूदा सीमा समाप्त कर दी जाए। 1982 के संविधान के जरिए लागू हुई इस सीमा के खात्मे का मतलब यह माना जा रहा है कि मौजूदा राष्ट्रपति शी चिनफिंग भी माओत्से तुंग की तरह आजीवन राष्ट्रप्रमुख बने रहेंगे।

चीन का सरकारी मीडिया इसे एक अच्छे और जरूरी कदम के रूप में पेश कर रहा है तो, पश्चिमी देश इसे एक व्यक्ति की तानाशाही लागू होने की पूर्वपीठिका बता रहे हैं। मगर यहां एक सवाल यह बनता है कि शी चिनफिंग ने दूसरा कार्यकाल अभी शुरू ही किया है, जिसकी अवधि 2022 तक है।

ऐसे में इस प्रस्ताव की जरूरत अभी क्यों आ पड़ी? इसका जवाब कुछ हद तक उत्तराधिकार की उस प्रक्रिया में मिलता है, जिसका प्रावधान 1982 के संविधान में किया गया है। इस प्रक्रिया के मुताबिक करीब डेढ़ दशक पहले से यह स्पष्ट होने लगता है कि किसे आगे चलकर राष्ट्रपति बनना है।

पॉलित ब्यूरो की स्टैंडिंग कमेटी में सदस्य और भी होते हैं, लेकिन सबको पता होता है कि उगने वाला सूर्य कौन सा है। ऐसे में दूसरे कार्यकाल में चल रहे राष्ट्रपति को राष्ट्र प्रमुख की कानूनी हैसियत भले मिली रहे, नौकरशाही का रुझान उस दूसरे नेता की तरफ होने लगता है, जो कुछ समय बाद सत्ता संभालने वाला होता है।

यानी कम्यूनिस्ट पार्टी का यह प्रस्ताव आगे चलकर और चाहे जो भी करे या न करे, इस दूसरे कार्यकाल में सत्ता का गुरुत्व केंद्र शी चिनफिंग के इर्द-गिर्द बनाए रखने में जरूर मददगार होगा।

इसमें भी दो राय नहीं कि शी चिनफिंग ने चीन की संकटग्रस्त व्यवस्था को उबारने की अच्छी-खासी कोशिशें की हैं। भ्रष्टाचार विरोधी अभियान के जरिए जहां उन्होंने आम जनता की नजरों में सरकारी तंत्र को विश्वसनीय बनाने का प्रयास किया, वहीं आर्थिक समानता जैसे जीवन मूल्यों को विमर्श में वापस लाने और शासन की एक अहम कसौटी बनाने का श्रेय भी उन्हें ही जाता है।

स्वाभाविक है कि चीनी कम्यूनिस्ट पार्टी की इस नई पहल के समर्थन और विरोध के प्रबल तर्क चीन के अंदर भी मौजूद होंगे। इस बारे में बाहर से कोई राय दोनों पक्षों को ठीक से जाने बगैर नहीं बनाई जा सकती।

GS World
Committed To Excellence

क्या है मामला?

हाल ही में चीन की संसद ने राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पद के लिए दो कार्यकाल की निर्धारित सीमा को खत्म कर दिया। इसके बाद वर्तमान राष्ट्रपति शी चिनफिंग के आजीवन राष्ट्रपति बने रहने का रास्ता साफ हो गया।

चीन की संसद ने दो कार्यकाल की अनिवार्यता को दो तिहाई बहुमत से खत्म किया है। सत्तारूढ़ कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ चाइना (CPC) द्वारा प्रस्तावित संशोधन को संसद से मंजूरी मिलना तय ही माना जा रहा था।

पृष्ठभूमि

माओत्से तुंग की तरह अनिश्चित काल तक फिर किसी के द्वारा सत्ता हथियाने के खतरे को देखते हुए सम्मानित नेता देंग शियोपिंग ने चीन में राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के लिए दो अधिकतम कार्यकाल यानी 10 साल तक सत्ता में रहने की सीमा तय कर दी थी।

हालांकि, रविवार को हुए संवैधानिक बदलाव के साथ ही 64 वर्षीय शी का आजीवन चीनी राष्ट्रपति बने रहने का रास्ता प्रशस्त हो गया। अभी उनका दूसरा कार्यकाल चल रहा है जो 2023 में खत्म होगा।

एकदलीय शासन प्रणाली में एक व्यक्ति का शासन

चीन ने राष्ट्रपति शी जिनपिंग के लिये दो कार्यकाल की समय-सीमा को समाप्त करने के फैसले का बचाव किया।

संविधान संशोधन के समय छब्ब के 2,963 प्रतिनिधियों में से तीन मतदान से अलग रहे, जबकि दो प्रतिनिधियों ने संविधान संशोधन के विरोध में वोट डाले।

चीन के राजनीतिक पर्यवेक्षक यह मानते हैं कि एकदलीय शासन प्रणाली वाले देश में एक व्यक्ति का शासन अच्छी तरह चल सकता है।

उल्लेखनीय है कि चीन में कम्युनिस्ट शासन के तहत एकदलीय शासन है तथा चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के पोलित ब्यूरो का प्रमुख ही राष्ट्रपति बनता है। चीन में राष्ट्रपति के चुनाव में सीधे जनता मतदान नहीं करती।

शी जिनपिंग की विचारधारा को चीनी संविधान का हिस्सा बना दिया गया है, जबकि इससे पहले केवल माओ और चीन में आर्थिक सुधारों का रास्ता खोलने वाले देंग श्याओ पिंग की विचारधारा को संविधान में जगह मिली थी।

वैसे शी जिनपिंग के पूर्ववर्ती जियांग जेमिन और हू जिंताओ के विचारों का पार्टी संविधान में उल्लेख है, लेकिन उनके नामों का उल्लेख नहीं है।

वर्तमान चीनी राष्ट्रपति का अपने दूसरे कार्यकाल के बाद भी शासन करने का इरादा है, संभवत: इसीलिये ब्ब्ब की सभी इकाइयों ने सामूहिक नेतृत्व के सिद्धांत को दरकिनार कर उन्हें पार्टी का शीर्ष नेता घोषित कर रखा है।

भारत के लिये इन बदलावों की अहमियत

चीन में राष्ट्र पति शी जिनपिंग के आजीवन सत्ता में बने रहने का रास्ता साफ होने के बाद भारत की चिंताएँ और बढ़ गई हैं। भारत की यह चिंता कहीं-न-कहीं चीन की बढ़ती ताकत और उसके द्वारा भारत को घेरने के लिये लगातार किये जा रहे प्रयासों को लेकर भी है। जहाँ तक इस संबंध में भारत की पहल का प्रश्न है तो भारत शुरू से ही चीन की आक्रामकता को दरकिनार कर बातचीत का पक्षधर रहा है।

चीन के साथ संबंधों को मधुर बनाना भारत की प्राथमिकता में शुरू से ही शामिल रहा है। यही वजह है कि भारत ने तिब्बबत और चीन के विवाद में न पड़ने का फैसला लिया है।

भारत मानता है कि यह वक्तन दोनों देशों के बीच संबंधों को लेकर काफी अहम है। चीन का तिब्बभत से भावनात्मतक जुड़ाव है और उसकी भारत से नाराजगी इस बात को लेकर भी है कि उसने दलाई लामा को भारत में शरण दे रखी है। दोनों देशों के बीच यह विवाद काफी पुराना है और भारत अब इस विवाद पर विराम लगाना चाहता है।

मालदीव के मुद्दे पर भी भारत ने समझदारी का परिचय दिया है और वहाँ चीन से बढ़ते खतरे को भाँपते हुए भारत ने मनमुटाव को बढ़ावा न देने का फैसला लिया है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारत चीन के साथ संबंधों को मजबूत बनाने की पहल कर रहा है तथा इस वर्ष जून में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का चीन दौरा प्रस्तावित है।

दूसरी ओर चीन पाकिस्तानी आतंकी सरगना मसूद अजहर को संयुक्त राष्ट्र से आतंकवादी घोषित कराने के लिये भारत द्वारा चलाई जा रही मुहिम का विरोध करता रहा है।

इसके अलावा पिछले वर्ष भारत द्वारा किये गए लंबी दूरी की बैलेस्टिक मिसाइल अग्नि-5 के परीक्षण पर प्रतिक्रिया देते हुए चीन ने पाकिस्तान के मिसाइल कार्यक्रमों को मदद देने का संकेत दिया था।

चीन की महत्त्वाकांक्षी वन बेल्ट वन रोड (बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव-BRI) को लेकर भारत की संप्रभुता संबंधी चिंताएँ वाजिब हैं। इस प्रोजेक्ट के तहत चीन के 46 अरब डॉलर के निवेश से बन रहा चीन-पाकिस्तान आर्थिक कॉरिडोर (CPEC) भी भारत की परेशानी का कारण है, क्योंकि यह विवादित कश्मीर की भूमि से होकर गुजर रहा है, जिस पर भारत अपना दावा करता है। भारत CPEC को चीन के घातक प्रयास के रूप में देखता है और अपनी संप्रभुता तथा क्षेत्रीयता का उल्लंघन मानते हुए विरोध भी दर्ज कराता है, लेकिन इस मुद्दे पर उग्र प्रतिक्रिया देने से बचता रहा है।

संभावित प्रश्न

प्रश्न. चीन के राष्ट्रपति शी चिनफिंग के आजीवन राष्ट्रपति बने रहने के लिए रास्ता साफ होना भारत के लिहाज से अच्छा नहीं है। चीन में हुए इस बदलाव से भारत और वैश्विक स्तर पर पड़ने वाले प्रभावों की चर्चा कीजिये।

लोकसभा एवं विधान सभा का चुनाव एक साथ

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (शासन व्यवस्था) से संबंधित है।

हाल ही में भारत में लोकसभा और विधानसभा का चुनाव एक साथ कराने का मुद्दा सुर्खियों में बना हुआ है। लोकसभा और विधानसभाओं का चुनाव एक साथ कराने का सुझाव नया नहीं है। परंतु कुछ विद्वान और नेता इसे फिर से खारिज कर दे रहे है। आखिर उनकी चिंता क्या है? इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्र अमर उजाला एवं दैनिक जागरण में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे जी.एस. वर्ल्ड टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

एक साथ चुनाव कराने का मतलब (अमर उजाला)

वर्तमान बजट सत्र के उद्घाटन भाषण में संसद के दोनों सदनों को संबोधित करते हुए राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने चिंता व्यक्त की कि बार-बार चुनाव होने से मानव संसाधन पर बोझ पड़ता ही है। साथ ही, आचार संहिता लागू होने से 'देश की विकास प्रक्रिया भी बाधित होती है।' अत: उन्होंने सुझाव रखा कि लोकसभा और विधानसभा का चुनाव एक साथ कराने के विषय पर 'चर्चा और संवाद बढ़ाना अच्छा है तथा सभी राजनीतिक दलों के बीच सहमति बनाई जानी चाहिए।' राष्ट्रपति के इस वक्तव्य ने, जो कि मंत्रिपरिषद द्वारा तैयार किया जाता है, तीव्र राजनीतिक बहस छेड़ दी है।

लोकसभा और विधानसभाओं का चुनाव एक साथ कराने का सुझाव कोई नया नहीं है। न्यायमूर्ति जीवन रेड्डी ने चुनाव सुधार संबंधी विधि आयोग के प्रतिवेदन में 1999 में इसकी अनुशंसा की थी। भारतीय जनता पार्टी के वरिष्ठ नेता श्री लालकृष्ण आडवाणी ने 2009 में इसका प्रतिपादन किया था।

पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी और संसद के कार्मिक विभाग संबंधी समिति ने भी इसका समर्थन किया। यह उल्लेखनीय है कि पहली लोकसभा से लेकर चौथी लोकसभा तक (1952, 1957, 1962 और 1967) लोकसभा और विधानसभा के चुनाव एक साथ ही होते रहे। यह संस्थापित परंपरा 1969 में टूटी, जब लोकसभा समय से पहले भंग कर दी गई।

तर्क दिया जाता है कि लोकसभा और विधानसभा का चुनाव एक साथ होने से सरकार के खर्च में कमी आएगी और राजस्व की बचत होगी। अनुमान के अनुसार, 16वीं लोकसभा के चुनाव पर कोई 3,800 करोड़ रुपये खर्च हुए। यदि विधानसभा चुनावों पर होने वाले खर्चों को जोड़ा जाए, तो यह राशि बहुत बड़ी रकम हो जाएगी। एक साथ चुनाव होने से राजनीतिक दलों के चुनाव पर होने वाले खर्च में भारी कमी आएगी, जिसके अपने लाभ हैं।

वैसे में, राजनीतिक दलों को चुनाव के लिए कॉरपोरेट जगत से चंदा लेने की जरूरत कम हो जाएगी, फलस्वरूप उसी अनुपात में कॉरपोरेट का सरकार पर प्रभाव कम या नगण्य होगा। यह किसी से छिपा नहीं है कि कॉरपोरेट जगत सरकार बनने के बाद अपने चंदे, परोक्ष या प्रत्यक्ष, के प्रभाव से सरकार की नीतियों को प्रभावित ही नहीं, नियंत्रित भी करता है।

इससे असमानता उत्पन्न होती है और विधि का राज क्षीण होता है। इससे सुरक्षा बलों के चुनाव संबंधी आवागमन और तैनाती पर होने

एक साथ चुनाव पर चिंता क्यों, यह देश को रोज-रोज के चुनावों से मुक्ति दिलाएगा (दैनिक जागरण)

लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराने के विचार को कुछ नेता और विद्वान सिरे से खारिज कर दे रहे हैं। आखिर उनकी चिंताए क्या हैं? चूंकि स्वतंत्रता के बाद चार बार अर्थात 1952, 1957, 1962, 1967 में लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ ही हुए थे इसलिए एक साथ चुनाव का विचार कोई ऐसा क्रांतिकारी विचार नहीं जो लोकतंत्र या संघीय व्यवस्था के लिए खतरा हो। 1967 में चौथे आम-चुनावों के बाद आठ राज्यों-बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, तमिलनाडु और केरल की विधानसभाओं में कांग्रेस को बहुमत नहीं मिला और संयुक्त विधायक दलों (संविद) की गैर-कांग्रेसी सरकारें बनीं। यह भारतीय लोकतंत्र का एक नया स्वरूप था।

देश की सुरक्षा और विकास में कोई बाधा नहीं आएगी

इसने न केवल गैरकांग्रेसी दलों को विभिन्न राज्यों में राजनीतिक 'स्पेस' दिया वरन प्रतिस्पर्धात्मक संघवाद की शुरुआत भी की। इसने यह रेखांकित किया कि केंद्र में कांग्रेस और राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारें होने से देश की सुरक्षा और विकास में कोई बाधा नहीं आएगी, लेकिन राज्यों में संविद सरकारों के घटक-दलों में कोई तालमेल न होने से वे सरकारें दलबदल और अस्थिरता का शिकार हो गईं।

इससे मध्यावधि चुनावों का दौर शुरू हो गया और लोकसभा एवं विधानसभाओं के चुनाव अलगअलग होने लगे। चंद दिनों पहले पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने अपने विचारों को बदलते हुए एक साथ चुनाव कराने की व्यावहारिकता के साथ-साथ उसके प्रतिनिध्यात्मक स्वरूप पर भी सवाल उठाए। देश ने जब 1950 में संवैधानिक लोकतंत्र में प्रवेश किया उस समय संसाधनों का अभाव था, फिर भी चुनाव आयोग ने सफलतापूर्वक एक साथ चुनाव कराए तो फिर आज व्यावहारिकता का प्रश्न उठाना कितना उचित है? आज तो चुनाव आयोग के पास अनुभव, संसाधन और टेक्नोलॉजी, तीनों की प्रचुरता है। प्रणब मुखर्जी ने यह भी स्पष्ट नहीं किया कि एक साथ चुनाव से बनी लोकसभा और विधानसभाएं कैसे कम प्रतिनिध्यात्मक होंगी? और क्या प्रथम चार लोकसभाएं कम प्रतिनिध्यात्मक थीं?

कांग्रेस को लगता है एक साथ चुनाव भाजपा के पक्ष में चले जाएंगे

हालांकि एक साथ चुनाव कराने में आने वाली कठिनाइयों के कई राजनीतिक, संवैधानिक और प्रशासनिक पहलू है, लेकिन क्या वाकई कांग्रेस और अन्य राजनीतिक दलों को यह लगता है कि एक साथ चुनाव भाजपा के पक्ष में चले जाएंगे? क्या शुरुआती चुनावों, जिनमें एक साथ चुनाव कांग्रेस के पक्ष में चले गए थे, के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना ठीक होगा? बदले हुए संदर्भ में इसका उलट

Committed To Excellence

वाले खर्च भी कम हो जाएंगे। साथ ही विकास की प्रक्रिया स्थायी बनी रहेगी, जो कि अभी अक्सर चुनाव की वजह से आदर्श आचार संहिता लगने के कारण अवरुद्ध हो जाती है ।

परंतु प्रश्न यह उठता है कि एक साथ चुनाव कराने में क्या कोई सांविधानिक अवरोध है। संविधान के अनुसार, लोकसभा और विधानसभा का कार्यकाल पांच साल होता है, यदि उसे समय से पूर्व भंग न किया जाए। लोकसभा और विधानसभा पहली बैठक से पांच वर्ष की अवधि के समाप्त होते ही भंग हो जाती है, यदि उससे पूर्व राष्ट्रपति या राज्यपाल ने उन्हें भंग न किया।

यदि एक साथ लोकसभा और विधानसभा का चुनाव इस वर्ष के अंत में या अगले वर्ष कराना है, तो उन राज्यों की विधानसभाओं को भी भंग करना होगा, जहां अन्यथा चुनाव 2019, 2020, 2021 या 2022 में होना है। सवाल यह भी है कि उत्तर प्रदेश, गुजरात, पंजाब और हिमाचल प्रदेश जैसे जिन राज्यों में विधानसभा चुनाव एक साल या थोड़े समय पहले ही हुए हैं, वहां की सत्तारूढ़ पार्टियां विधानसभाओं को भंग करने के लिए तैयार होंगी या नहीं।

जिन राजनीतिक दलों की राज्यों में अभी सरकारें बनी हैं, वे निस्संदेह राजनीतिक और व्यावहरिक कारणों से नहीं चाहेंगी कि उनकी विधानसभा समय से इतने पहले भंग हो और दोबारा चुनाव हो। क्योंकि इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि वही सरकार पुन: जनता द्वारा चुनकर आएगी। फिर यदि यह मान लिया जाए कि राजनीतिक दलों में वर्तमान में एक साथ चुनाव के लिए सहमति बन गई, तो इस बात की क्या गारंटी है कि भविष्य में राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद 356 का उपयोग करते हुए किसी विधानसभा को समय से पूर्व भंग नहीं करेंगे।

अत: एक साथ चुनाव करने के लिए संविधान में संशोधन करना होगा, ताकि कोई भी विधानसभा समय से पहले भंग न हो। विधानसभाओं, खासकर छोटी विधानसभाओं में अक्सर मुख्यमंत्री के विरोध में अविश्वास प्रस्ताव लाए जाते हैं, जिनका एक ही उद्देश्य सरकार को गिराना या उसे अस्थिर करना होता है। इस प्रस्ताव में इस बात की व्यवस्था नहीं होती कि अविश्वास प्रस्ताव जीतने पर प्रतिपक्ष स्थिर सरकार देने की स्थिति में होगा कि नहीं। भैरो सिंह शेखावत ने सुझाव दिया था कि यदि कोई विपक्षी दल सरकार के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाता है, तो उसमें यह भी होना चाहिए कि यदि सरकार गिरी, तो उसका विकल्प क्या होगा। परंतु यह सुझाव मात्र सुझाव ही रह गया।

एक साथ चुनाव का यह सुझाव कई पहलुओं से महत्वपूर्ण है, जैसे, सरकार के चुनाव खर्च में कमी होगी, देश में राजनीतिक स्थिरता, राजनीतिक दलों के खर्चों में कमी और राजनीतिक पारदर्शिता आएगी। परंतु प्रश्न यह भी है कि क्या भारतीय राजनीति 'एक राष्ट्र, एक बाजार और एक कर' की अवधारणा को आगे बढ़ाते हुए, 'एक नेता, एक राजनीतिक पार्टी' के वर्चस्व तक सिमट कर रह जाएगी।

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक गणतंत्र है। यह अनेकता में एकता का देश है। भारतीय संविधान में सत्ता का विकेंद्रीकरण है। भारत एकात्मक नहीं, बल्कि संघात्मक गणराज्य है। विचारणीय प्रश्न यह है कि एक साथ चुनाव कराने से भारत की क्षेत्रीय और राजनीतिक आशाएं और अपेक्षाएं सुदृढ़ होंगी या कुंठित। क्या हम अमेरिकी शैली के प्रेसिडेंशियल गणतंत्र की ओर अग्रसर होंगे और क्या हमारा जनतांत्रिक बहुलतावाद, जो हमारे गणतंत्र का मेरुदंड है, संरक्षित रह पाएगा?

भी तो हो सकता है? क्या पिछले सत्तर वर्षों में भारतीय मतदाता ने अपनी परिपक्वता प्रमाणित नहीं की है? यदि इस बार एक साथ चुनाव हो भी जाएं तो उसे आगे भी साथ-साथ करना कैसे सुनिश्चित किया जाए? इस सवाल का हल खोजना जरूरी है।

आखिर तब क्या होगा जब प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री पांच वर्ष के पहले ही त्यागपत्र दे दें या अविश्वास प्रस्ताव पर पराजित हो जाएं और लोकसभा या विधानसभा भंग करने की सलाह दें अथवा अनु. 356 के तहत किसी राज्य में आपातकाल लागू होने पर राज्य सरकार को बर्खास्त कर विधानसभा भंग कर दी जाए? ऐसे में लोकसभा या विधानसभाओं को भंग करने का प्रावधान ही केंद्रीय है जो मध्यावधि चुनाव की ओर ले जाएगा और इससे एक साथ चुनावों का क्रम भंग हो जाएगा। इससे निपटने के लिए हमें संविधान के अनु 85(2)ख और अनु 174(2)ख में संशोधन कर 'भंग' की जगह निलंबन शब्द का प्रयोग करना होगा अर्थात राष्ट्रपति लोकसभा और राज्यपाल विधानसभा को भंग नहीं कर सकेंगे। वे उसे निलंबित रखेंगे। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब विधानसभाओं को निलंबित रखा गया है।

मध्यावधि चुनावों का कोई प्रश्न ही नहीं उठेगा

हाल के समय में जनवरी 2010 में जम्मू- कश्मीर, दिसंबर 2013 में दिल्ली और जनवरी 2016 में अरुणाचल प्रदेश की विधानसभा को निलंबित रखा गया। इस संशोधन का परिणाम यह होगा कि सरकार त्यागपत्र देने या गिरने की स्थिति में विभिन्न दल आपसी तालमेल का पुन: प्रयास करेंगे और किसी समझौते पर पहुंच कर, बिना चुनावों के झंझट में पड़े, एक नई सरकार बना सकेंगे। राज्यपाल द्वारा अनु 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लगाने के साथ विधानसभा भंग करने के प्रतिवेदन पर केंद्र-राज्यों में हमेशा विवाद होते रहे हैं। उपरोक्त संशोधन से इन विवादों का भी पटाक्षेप हो सकेगा। जाहिर है इसके लिए उन सभी संवैधानिक प्रावधानों में भी संशोधन करना होगा जिनमें लोकसभा या विधानसभाओं को भंग करने का उल्लेख आया है। इससे लाभ यह होगा कि अपने पांच वर्ष के कार्यकाल के पहले लोकसभा या विधानसभाएं भंग ही नहीं हो सकेंगी। इससे मध्यावधि चुनावों का कोई प्रश्न ही नहीं उठेगा और तब एक साथ चुनावों का क्रम भी कभी नहीं टूटेगा।

रोज-रोज के चुनावों से मुक्ति मिलेगी

यह संसदात्मक लोकतंत्र में एक नया प्रयोग होगा जो विधायिका को स्थायित्व की ओर ले जाएगा और देश को रोज-रोज के चुनावों से मुक्ति दिलाएगा। चूंकि राज्यसभा और राज्यों में विधान परिषदों को पूर्ण स्थायित्व प्राप्त है इसलिए इन सदनों को भी स्थायित्व देना कोई गैर-संसदात्मक या गैर- लोकतांत्रिक कदम नहीं। संभवत: हमारे जन-प्रतिनिधियों को भी इससे कुछ राहत मिलेगी और वे भी चुनावों के बाद अपने निर्वाचन क्षेत्र के विकास पर ध्यान दे सकेंगे। अभी तो वे चुनाव की चिंता में लगे रहते हैं। यह आश्चर्य की बात है कि देश में जितने चुनाव होते हैं, सबकी अलगअलग मतदाता सूचियां हैं।

ऐसे ही अनेक चुनाव-सुधारों की देश को जरूरत

आखिर एक मतदाता सूची क्यों नहीं हो सकती जो सभी चुनावों का आधार बने? कई बार चुनाव आयोग द्वारा जारी मतदाता पहचान-पत्र और उसी के द्वारा बनाई मतदाता-सूची में अंतर्विरोध दिखता है। वोट देने में पहचान-पत्र बेकार हो जाता है, अगर मतदाता सूची में नाम नहीं है। ऐसे ही अनेक चुनाव-सुधारों की देश को जरूरत है, लेकिन बड़ा प्रश्न यह है कि हम अपने लोकतंत्र को कब तक चुनावतंत्र के पर्याय के रूप में पेश करते रहेंगे? चुनावों से आगे 'सुशासन' कब हमारे राष्ट्रीय विमर्श का केंद्रबिंदु बनेगा? देश में लोकसभा, विधानसभाओं, नगरपालिकाओं, पंचायतों के चुनाव होते ही रहते हैं। बीच-बीच में उप-चुनाव भी चलते रहते हैं। अखबार और टीवी पर बहसों में हर समय चुनाव-चर्चाएं उबाने लगीं हैं। हम शासन, प्रशासन, नीतियां, सरकारी निर्णय, विकास और लोक-कल्याण के कार्यों की समीक्षा पर कब ध्यान केंद्रित करेंगे?

GS World
Committed To Excellence

संभावित प्रश्न

प्रश्न. चुनावी प्रक्रिया का समेकन एक गंभीर विषय है, जिसका संबंध समकालीन राजनीति से तो है ही, साथ ही देश की जीवंत संवैधानिक प्रक्रिया से भी है। एक साथ चुनाव कराने के विचार पर चर्चा करते हुए इसमें व्याप्त चुनौतियों का उल्लेख कीजिये।

सरकारों और दलों को अपने काम में मन लगाने का अवसर मिलेगा

यदि सभी चुनाव एक साथ या एक वर्ष में हो जाएं तो कम से कम अगले चार वर्ष तो सभी सरकारों और दलों को अपने काम में मन लगाने का अवसर मिलेगा। अगर हम अपने प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्रियों, मंत्रियों और जन-प्रतिनिधियों को हर समय यहां-वहां चुनावों में दौड़ाते रहेंगे तो वे स्थिर मन से जनता के लिए काम कब करेंगे? नौकरशाह चुनावों की दुहाई देकर उन कामों को भी नहीं करते जो आचार-संहिता के लागू होने से प्रतिबंधित नहीं होते। इस मुद्दे पर कोई अंतिम निर्णय लेने से पूर्व सभी प्रभावित पक्ष और विद्वान एक साथ चुनाव की चर्चा पर सहभागिता करें ताकि भारतीय लोकतंत्र और संघीय व्यवस्था और सशक्त एवं गतिमान हो सके।

GS World टीम...

क्या है मामला?

- 16वीं लोकसभा के चुनाव में जीत दर्ज करने के बाद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने चुनावी प्रक्रिया के समेकन की बहस प्रारंभ की थी। इसी राह पर कदम बढ़ाते हुए अब सरकार ने लोकसभा तथा विधानसभाओं के चुनावों को एक साथ कराने की संभावनाओं को तलाशने का काम नीति आयोग को सौंपा है।

पृष्ठभूमि

- देश में पहले भी लोकसभा और विधानसभा के चुनाव एक साथ हुए हैं। पहली चार लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के चुनाव 1952, 1957, 1962 और 1967 में एक साथ हुए थे। संविधान विशेषज्ञ सुभाष कश्यप के अनुसार 1967 के बाद स्थिति ऐसी आई। चौथे आम चुनाव (1967) के बाद राज्यों में कांग्रेस के विकल्प के रूप में बनी संविद (संयुक्त विधायक दल) सरकारें जल्दी-जल्दी गिरने लगीं और 1971 तक आते-आते राज्यों में मध्यावधि चुनाव होने लगे।
- 1969 में कांग्रेस का विभाजन हुआ और इंदिरा गांधी ने 1971 में लोकसभा भंग कर मध्यावधि चुनाव की घोषणा कर दी, जबकि आम चुनाव एक वर्ष दूर था। इस प्रकार पहली बार लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव एक साथ होने का सिलसिला पूर्णत: भंग हो गया।

दो चरणों में एक साथ कराए जाएँ चुनाव

- नीति आयोग की मसौदा रिपोर्ट में राष्ट्रहित के मद्देनजर 2024 से लोकसभा और विधानसभाओं के लिये एक साथ दो चरणों में चुनाव करवाने की बात कही गई है।
- पहला चरण 2019 में 17वें आम चुनाव के साथ तथा दूसरा 2021 में, 17वीं लोकसभा के मध्य में कुछ विधानसभाओं की अवधि को घटा कर तथा कुछ की अवधि को बढ़ा कर किया जा सकता है। चूँकि फिलहाल कोई संभावना दिखाई नहीं दे रही, इसलिये नीति आयोग ने इसे 2024 से लागू करने का संकेत दिया है।
- नीति आयोग ने इन सिफारिशों का अध्ययन करने और इस संबंध में मार्च 2018 की समय सीमा तय करने के लिये चुनाव आयोग को नोडल एजेंसी बनाया है।
- राष्ट्रहित में इसे लागू करने के लिये संविधान और इस मामले पर विशेषज्ञों, थिंक टैंक, सरकारी अधिकारियों और विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों सहित पक्षकारों का एक विशेष समूह गठित किया जाना चाहिये, जो इसे लागू करने संबंधी सिफारिशें करेगा।
- इसमें संवैधानिक और वैधानिक संशोधनों के लिये मसौदा तैयार करना, एक साथ चुनाव कराने के लिये संभव कार्ययोजना तैयार करना, पक्षकारों के साथ बातचीत के लिये योजना बनाना और अन्य जानकारियां जुटाना शामिल होगा।
- भारत में विधायिकाओं का चुनाव पाँच साल के लिये होता है, लेकिन उनकी यह अवधि निश्चित नहीं है।
- जर्मनी और जापान में इस तरह की व्यवस्था लागू है, वहाँ निश्चित समयावधि से पहले चुनाव नहीं होते, उनका नेतृत्व जरूर बदल जाता है।

एक साथ चुनाव के पक्ष में तर्क

- एक साथ चुनाव कराने से न केवल मतदाताओं का उत्साह बना रहेगा, बल्कि इससे धन की बचत होगी और प्रशासनिक प्रयासों की पुनरावृति से भी बचा जा सकेगा।
- राजनीतिक दलों के खर्च पर भी नियंत्रण लगेगा, जिससे चुनावों में काला धन खपाने जैसी समस्या से भी बचाव होगा।
- बार-बार चुनावी आदर्श आचार संहिता भी लागू नहीं करनी पड़ेगी, जिससे जनहित के कार्य प्रभावित होते हैं।
- सरकारी अधिकारियों, शिक्षकों व कर्मचारियों की चुनावी ड्यूटी लगती है, जिससे बच्चों की पढ़ाई व प्रशासनिक कार्य प्रभावित होते हैं उस पर अंकुश लगेगा।
- एक साथ लोकसभा व विधानसभा के चुनाव होने पर सरकारी मशीनरी की कार्य क्षमता बढ़ेगी तथा आम लोगों को इससे फायदा होगा।
- एक साथ चुनाव कराने के समर्थक इसके पक्ष में जो सबसे मजबूत दलील देते हैं वह यह कि इससे सरकारी धन की भारी बचत होगी। 1952 के लोकसभा और विधानसभा चुनावों पर 10 करोड़ रुपए खर्च हुए थे, जबकि 2014 के लोक सभा चुनावों में सरकार ने 4500 करोड़ रुपए खर्च किये ।
- एक साथ चुनाव होने से राजनीतिक स्थिरता का दौर शुरू होगा, जिससे विकास-कार्यों में तेजी आएगी।
- एक मतदाता सूची होने के कारण सभी चुनावों में उसका इस्तेमाल किया जा सकेगा और सूची में नाम न होने की समस्या समाप्त हो जाएगी।

भारत-फ्रांस संबंध

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (अंतर्राष्ट्रीय संबंध) से संबंधित है।

हाल ही में फ्रांस के राष्ट्रपति इमैनुएल मैक्रों भारत की चार दिवसीय यात्रा पर रहे। मैक्रों द्वारा की गयी भारत यात्रा हाल में हुए कई दूसरे देशों के राष्ट्राध्यक्षों के मुकाबले ज्यादा परिणामकारी तथा भविष्य की दृष्टि से ऐतिहासिक आयाम देने वाली रही है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्र दैनिक जागरण, अमर उजाला एवं प्रभाव खबर में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे जी.एस. वर्ल्ड टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

नए आसमान पर भारत-फ्रांस संबंध, जिबूती में भी होगी चीन की घेराबंदी (दैनिक जागरण)

फ्रांस के राष्ट्रपति इमैनुएल मैक्रों की चार दिवसीय भारत यात्रा हाल में हुए कई दूसरे देशों के राष्ट्राध्यक्षों के मुकाबले ज्यादा परिणामकारी तथा भविष्य की दृष्टि से ऐतिहासिक आयाम देने वाली रही है। यद्यपि इस यात्रा के कई कार्यक्रम थे, जिसमें विश्व सौर सम्मेलन से लेकर वाराणसी की यात्रा तथा उत्तर प्रदेश के ही मीर्जापुर में फ्रांस की कंपनी एनवॉयर सौलर प्राइवेट लिमिटेड और नेडा द्वारा निर्मित दादरकलां गांव में 650 करोड़ रुपये से बने 75 मेगावाट के सौर ऊर्जा परियोजना का उद्घाटन शामिल था। इनका भी अपना महत्व है, लेकिन इसके पहले जो 14 समझौते हुए उनके दूरगामी सामरिक, आर्थिक, व्यापारिक तथा रक्षा-सुरक्षा क्षेत्र में व्यापक महत्व से कोई इन्कार नहीं कर सकता।

वास्तव में पहले से ही यह बात साफ हो गई थी दोनों देश रक्षा क्षेत्र में कुछ ऐसा समझौता करेंगे जो भविष्य में हिंद-प्रशांत क्षेत्र का सामरिक परिदृश्य बदल सकता है। रक्षा क्षेत्र में हुए समझौते को ऐतिहासिक मानने से कोई इन्कार नहीं कर सकता। आखिर दोनों देशों की सशस्त्र सेनाओं द्वारा एक-दूसरे के सैन्य ठिकानों का इस्तेमाल तथा सैन्य साजोसामान का आदान प्रदान करने का समझौता हमने और कितनी शक्तियों से साथ किया है? अमेरिका के बाद फ्रांस ही अकेला ऐसा देश है जिसके साथ यह समझौता हुआ है।

सैन्य साजो-सामान का होगा आदान-प्रदान

अब भारत और फ्रांस की सेनाएं रणनीतिक जरूरतों के मुताबिक एक-दूसरे के सैन्य ठिकानों का इस्तेमाल व सैन्य साजो-सामान का आदान प्रदान कर सकेंगी। दोनों देशों की सेनाएं साजोसामान की आपूर्ति, युद्ध अभ्यास, प्रशिक्षण, मानवीय सहायता और आपदा राहत कार्यों में भी सहयोग करेंगी। इसका एक महत्वपूर्ण बिंदु समुद्री क्षेत्र में सुरक्षा, जलपोतों की निगरानी तथा जल सर्वेक्षण के संबंध में सहयोग है। साफ है कि दोनों देश अपने नौसेना अड्डे को एक-दूसरे के लिए खोलेंगे। वास्तव में मैरीटाइम अवेयरनेस के तहत भारत और फ्रांस अब एक-दूसरे के नौसैनिक अड्डों को युद्धपोतों को रखने और नेविगेशन यानी आने-जाने के लिए इस्तेमाल कर सकेंगे।

जिबूती में चीन पर नजर रखेगा भारत

फ्रांस से दोस्ती का मतलब (अमर उजाला)

जब 1980 के दशक के प्रारंभ में हिंदी-रूसी भाई-भाई के चरम दौर में इंदिरा गांधी सरकार को तत्कालीन सोवियत संघ ने मिग लड़ाकू विमान का उन्नत संस्करण देने से मना कर दिया, तब भारत ने फ्रांस से मिराज 2000 का सौदा किया था। भारत ने तब मॉस्को के साथ अन्य देशों को भी स्पष्ट संदेश दे दिया था कि अपनी सुरक्षा हितों के लिए भारत कहीं भी वैकल्पिक रास्ता तलाश सकता है। जब पिछली मनमोहन सिंह सरकार ने फ्रांस के राफेल विमान का चयन किया, तो उसने अमेरिकी, ब्रिटिश, रूसी और स्वीडिश-सभी बोली लगाने वालों को नाराज कर दिया।

हालांकि बाद में यह सौदा रोक दिया गया और अब नरेंद्र मोदी सरकार द्वारा इसके नए अवतार पर काम चल रहा है। फ्रांस की आक्रामक विक्रय नीति के बावजूद फ्रांस के राष्ट्रपति इमैनुएल मैक्रों की मौजूदा भारत यात्रा के दौरान जरूरत होते हुए भी भारत ने 36 से ज्यादा राफेल विमानों की मांग नहीं की।

हो सकता है कि ऐसा कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी के आरोपों की वजह से हुआ हो, जिसमें उन्होंने मोदी पर मैक्रों से 'गुप्त' सौदा करने का आरोप लगाया है। गांधी को याद दिलाया जाना चाहिए कि उनके दिवंगत पिता ने भी 1986 में तत्कालीन स्वीडिश प्रधानमंत्री ओलोफ पाल्मे को कीमत कम करने और सबसे ज्यादा अनुकूल शर्तों पर राजी करने के बाद बोफोर्स समझौता किया था।

नतीजतन सबसे अच्छी बंदूक सबसे अच्छी कीमत पर खरीदी गई। विपक्ष ने उसमें रिश्वत का आरोप लगाया, जो कभी साबित नहीं हुआ। भाजपा ने नरसिंह राव सरकार पर रूस से सुखोई विमान एमके3 की खरीद में रिश्वत देने का आरोप लगाया, पर वह भी निराधार साबित हुआ।

इस मुद्दे पर जोर देने की जरूरत है, क्योंकि अभियोजक और अभियुक्त बदल गए हैं। एक राष्ट्र के रूप में सोची-समझी, उद्देश्यपूर्ण और संतुलित दृष्टिकोण की जरूरत है, क्योंकि रक्षा सौदा एक जटिल कवायद है और भारत दुनिया का सबसे बड़ा हथियार आयातक है। निरंतर निगरानी निश्चित रूप से जरूरी है, पर यह ध्यान में रखना चाहिए कि रक्षा सौदों पर आरोप एक जटिल विषय है और सशस्त्र

GS World
Committed To Excellence

यह बहुत बड़े सहयोग की शुरुआत है। फ्रांस मेडागास्कर के पास हिंद महासागर स्थित रियूनियन द्वीप और अफ्रीकी बंदरगाह जिबूती में भारतीय जहाज को प्रवेश देगा। इससे भारत का समुद्र के रास्ते होने वाला कारोबार मजबूत होगा। ध्यान रखिए जिबूती में चीनी सैन्य अड्डा भी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह रणनीतिक रूप से काफी महत्वपूर्ण है। यहां से चीन की गतिविधियों पर आसानी से नजर रखी जा सकती है। प्रशांत महासागर से जुड़े भारतीय हितों के लिए भी यह द्वीप खास भूमिका अदा कर सकता है। चीन ने अफ्रीकी देश जिबूती में जो नौसैनिक अड्डा बनाया है उसका उद्देश्य क्या हो सकता है? हम उससे आंखें तो मूंद नहीं सकते। इसलिए हमें भी फ्रांस के साथ आना पड़ा है। राष्ट्रपति इमैनुएल मैक्रों ने साफ शब्दों में कहा कि फ्रांस इस क्षेत्र की सुरक्षा को लेकर बेहद सक्रिय है और यहां स्थिरता को लेकर भारत हमारा अहम सुरक्षा साझेदार है। यानी यह न कोई छिपा समझौता है और न इसके उद्देश्य को अस्पष्ट रखा गया है।

चीन ने नहीं दी कोई प्रतिक्रिया

चीन ने हालांकि भारत फ्रांस संबंधों पर कोई त्वरित प्रतिक्रिया नहीं दी है, लेकिन उसे पता है कि यह कोई निष्क्रिय समझौता नहीं है। हालांकि चीन की गतिविधियां हमारे लिए चिंता का कारण हैं और इस समझौते में इसका ध्यान रखा गया है, लेकिन इसका निशाना केवल वही है, ऐसा कहना भी गलत होगा। दुनिया जिन स्थितियों से गुजर रही है उसे देखते हुए कई देश रक्षा क्षेत्र में एक-दूसरे के साथ आ रहे हैं। कभी भी परिस्थितियां प्रतिकूल हुई तो फिर ये समझौते उस समय काम आएंगे। फ्रांस और इसके पहले अमेरिका जैसी प्रमुख रक्षा शक्तियों ने यदि भारत को समान महत्व दिया है तो इसका अर्थ है कि भारत की बढ़ती रक्षा शक्ति को उसने स्वीकार किया है। समझौते के अनुसार सहयोग आगे बढ़ता है तो यह हिंद-प्रशांत क्षेत्र के रक्षा परिदृश्य में कुछ तो बदलाव करेगा।

हिंद-प्रशांत में भारत की नेतृत्व की भूमिका

अमेरिका पहले ही हिंद-प्रशांत क्षेत्र में भारत की नेतृत्वकारी भूमिका की घोषणा कर चुका है। फ्रांस का यह समझौता बिना घोषित किए इसे और सुदृढ़ करने वाला है। गोपनीय तथा संवेदनशील जानकारियों की सुरक्षा के बारे में भी जो समझौता हुआ उसे इसी के साथ जोड़कर देखा जाएगा। साथ ही मादक पदार्थ और नशीली दवाओं की तस्करी की रोकथाम के क्षेत्र में सहयोग बढ़ाने के समझौते पर भी हस्ताक्षर किए गए। आतंकवाद के खिलाफ सहयोग की घोषणा तो हुई ही। इस तरह रक्षा सहयोग को एक समग्र रूप दिया गया है।

16 अरब डॉलर के समझौतों पर मुहर

हालांकि दोनों देशों के संबंध केवल रक्षा क्षेत्र तक ही सीमित नहीं हैं। फ्रांस और भारतीय कंपनियों के बीच 16 अरब डॉलर के समझौतों पर मुहर लगी है। द्विपक्षीय सहयोग को और आगे बढ़ाने के लिए शिक्षा, मादक पदार्थों की रोकथाम, पर्यावरण, रेलवे, अंतरिक्ष, शहरी विकास और कुछ अन्य क्षेत्रों में भी समझौतों पर हस्ताक्षर किए हैं। दोनों देशों ने कुशल कर्मिकों के स्वदेश लौटने के बारे में आव्रजन के क्षेत्र में भी समझौता किया है। एक-दूसरे की शैक्षणिक योग्यताओं को मान्यता देने, साथ ही तेज और मध्यम गति की रेल के क्षेत्र में सहयोग बढ़ाने और रेलवे के आधुनिकीकरण के संबंध में बलों के आधुनिकीकरण में बाधा डालता है, जैसा बोफोर्स सौदे के बाद हुआ।

ज्यादा राफेल विमानों की खरीद का आदेश देने में थोड़ी देर करने के बावजूद भारत ने फ्रांस के साथ रिश्ते मजबूत किए हैं, क्योंकि फ्रांस एक अग्रणी यूरोपीय राष्ट्र है और संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य है, जो जर्मनी के साथ भारत के लिए रक्षात्मक दीवार बन सकता है, भले ब्रिटेन अनिश्चय में हो और रूस के साथ हमारे रिश्ते बदल गए हों।

फ्रांस ने पाकिस्तान को हथियार बेचने का अपना अधिकार त्याग दिया है, जैसा रूस ने लंबे समय तक किया था। यह फ्रांस को एक सुरक्षित साझेदार बनाता है, जैसा कि मैक्रों ने कहा, फ्रांस भारत को अपना पहला रणनीतिक साझेदार बनाना चाहता था और स्वयं भारत का पहला रणनीतिक साझेदार बनना चाहता था।

अगर कभी अमेरिका से हमारी सामरिक सौदेबाजी में बाधा आती है, तो फ्रांस एक सुरक्षित साझेदार है। भारत पहले से ही इस्राइल, दक्षिण अफ्रीका और अब जापान के साथ सौदा कर रहा है और इसने अपने दरवाजे और विकल्प खुले रखे हैं।

आज के जटिल और बहुध्रुवीय वैश्विक कूटनीति में केवल हथियार खरीदना एकमात्र चीज नहीं है। इसमें दोस्तों और दुश्मनों से तालमेल बिठाने की भी जरूरत होती है। दुश्मनों के खिलाफ कार्रवाई के लिए दीर्घकालीन आधार पर ज्यादा दोस्त बनाने की जरूरत होती है। एशिया के तेजी से सहयोग और संघर्ष का मंच बनने के साथ भारत व्यापक सहयोग की तलाश में उन देशों के साथ संबंध मजबूत करना चाहता है, जिनका वैश्विक मामलों में प्रभाव है।

फ्रांस उस अमेरिका की तुलना में कम समस्याग्रस्त साबित होगा, जो अफगानिस्तान में उलझा हुआ है और जिसके पाकिस्तान से संबंध फिलहाल बेहद तनावपूर्ण हैं। रूस या किसी के भी साथ अपने संबंधों को त्यागे बिना भारत को अपने हित में किसी से भी संबंध बनाने चाहिए।

फ्रांस ने पिछले महीने फाइनेंशियल ऐक्शन टास्क फोर्स में पाकिस्तान को ग्रे-लिस्ट में शामिल करने के लिए काफी सक्रियता दिखाई थी। मोदी और मैक्रों विभिन्न बहुपक्षीय मंचों पर आतंकवाद विरोध को मजबूत करने के लिए सहमत हुए हैं। उन्होंने जैश-ए मोहम्मद के सरगना मसूद अजहर के संदर्भ में संयुक्त बयान में संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य देशों से आह्वान किया है कि वे आतंकी संगठनों को चिह्नित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के संकल्प 1267 और अन्य प्रासंगिक प्रस्तावों को लागू करें।

चीन को ध्यान में रख सामरिक सहयोग को आगे बढ़ाते हुए फ्रांस और भारत ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किया, जो दोनों देशों के रक्षा बलों को एक दूसरे की सुविधाओं का लाभ उठाने तथा पारस्परिक आधार पर सैन्य सहायता प्रदान करने में मदद करेगा। यह अमेरिका के साथ हुए लॉजिस्टिक सपोर्ट एग्रीमेंट जैसा ही सौदा है, जो रक्षा सौदों में सामरिक गहराई और परिपक्वता का संकेत करता है।

भारत और फ्रांस ने सभी देशों से आतंकवादियों की सुरक्षित

GS World
Committed To Excellence

भी समझौता किया है। पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन के क्षेत्र में भी दोनों ने सूचनाओं के आदान-प्रदान पर सहमति व्यक्त की है। स्मार्ट सिटी, शहरी परिवहन प्रणाली और शहरी बस्तियों में विकास की परियोजनाओं में सहयोग के बारे में और जैतापुर परमाणु परियोजना के लिए ईंधन का भी समझौता हुआ है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा कि शिक्षा, आव्रजन के क्षेत्र में समझौते हमारे युवाओं के बीच करीबी संबंधों की रूपरेखा तैयार करेंगे। हमारे युवा एक-दूसरे के देश को जानें, एक-दूसरे के देश को देखें, समझें, काम करें ताकि हमारे संबंधों के लिए हजारों राजदूत तैयार हों। उनका यह कहना सही है कि हम सिर्फ दो सशक्त स्वतंत्र देशों तथा दो विविधतापूर्ण लोकतंत्रों के ही नेता नहीं हैं, बल्कि दो समृद्ध और समर्थ विरासतों के उत्तराधिकारी भी हैं। तो कुल मिलाकर कोई इसे अस्वीकार नहीं कर सकता कि मैक्रों की यात्रा से रक्षा सहित बहुपक्षीय संबंधों की ऐतिहासिक शुरुआत हुई है।

पनाहगाह और बुनियादी ढांचे को उखाड़ फेंकने, आतंकी नेटवर्क और उन्हें धन मुहैया कराने वाले चौनलों को बाधित करने तथा सीमापार आतंकी गतिविधियों को रोकने की अपील की है। परमाणु क्षेत्र में भारत और फ्रांस के बीच लंबे समय से सहयोग जारी है। भारत जब चाहेगा, फ्रांस उसे परमाणु रिएक्टर बेच सकता है। जैतपुर प्लांट में उसकी मदद के कारण वह दुनिया का सबसे बड़ा रिएक्टर बन पाया है।

इसके अलावा, भारत और फ्रांस एक दूसरे की शैक्षणिक डिग्रियों और योग्यता को मान्यता प्रदान करेंगे। ऐसा भारत ने रूस या अन्य किसी देश के साथ नहीं किया है। पांच हजार भारतीय फ्रांस में पढ़ते हैं और जब अमेरिकी वीजा या ब्रिटिश कोर्स फीस की समस्या पैदा होगी, तब यह आंकड़ा और बढ़ सकता है। कुल मिलाकर, भारत और फ्रांस की दोस्ती दो मजबूत और जिम्मेदार देशों की दोस्ती है।

भारत के लिए हमेशा एक भरोसेमंद दोस्त रहा है फ्रांस (प्रभात खबर)

आपसी आर्थिक, वाणिज्यिक समझदारी और साझेदारी का ही परिणाम है कि आज भारत में विदेशी निवेश के लिहाज से फ्रांस तीसरा सबसे बड़ा निवेशक देश बन चुका है। भारत में 400 से अधिक फ्रांस की कंपनियां काम कर रही हैं और सभी कंपनियों का संयुक्त टर्नओवर तकरीबन 25 अरब डॉलर से अधिक है। फ्रांस भारत का भरोसेमंद दोस्त इसलिए भी है कि जब परमाणु परीक्षण से नाराज दुनिया के ताकतवर देश भारत पर प्रतिबंध थोप रहे थे तब (1998) फ्रांस ने भारत के साथ रणनीतिक समझौते को आयाम दिया।

इतिहास में भी जाएं तो भारत और फ्रांस के संबंध लगातार परिवर्तित और मजबूत होते रहे हैं। इंग्लैंड की ही भांति फ्रांस भी भारत में एक औपनिवेशिक ताकत रहा है। बावजूद इसके दोनों देशों के बीच कभी भी खटास उत्पन्न नहीं हुई और फ्रांस द्वारा भारत के साथ आधुनिकीकरण के दौर में व्यापार, अर्थव्यवस्था, तकनीकी सहायता, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, परमाणु एवं रक्षा क्षेत्रों में नवीन सहयोग विकसित किया गया।

गौर करें तो दोनों देशों के बीच आर्थिक और सामरिक क्षेत्रों में बढ़ते सहयोग का मूल आधार विकसित रणनीतिक-राजनीतिक समझदारी ही है। विगत दो दशकों में भारत-फ्रांस संबंधों को एक नया आयाम मिला है और दोनों देशों ने राजनीतिक, आर्थिक व सामरिक संबंधों में बेहतरी के लिए गंभीर प्रयास किया है। फ्रांस के नेतृत्व के दृष्टिकोण में बदलाव के साथ-साथ कुछ द्विपक्षीय बाध्यताओं ने भी दोनों को एक-दूसरे के निकट लाया है। यह तथ्य है कि चीन युद्ध के बाद भारत न केवल महाशक्तियों, अपितु अफ्रीका व एशियाई देशों से भी अलग-थलग पड़ गया था।

भारत को एक ऐसे देश के प्रति आकृष्ट होना स्वाभाविक था, जिससे उसका काई क्षेत्रीय विवाद न रहा हो। फ्रांस व भारत के मध्य विचारधारा के स्तर पर विरोधाभास होने के बावजूद भी डी गॉल और पंडित नेहरू की विदेश नीति संबंधित पहल में कई प्रकार की समानताएं थीं जो एक-दूसरे को आकर्षित कीं। इसके अलावा 1962 में भारत व फ्रांस के बीच क्षेत्रों के हस्तांतरण संबंधी संधि के अनुमोदन ने भी दोनों देशों के रिश्तों में मिठास घोली।

उल्लेखनीय तथ्य यह कि फ्रांस सुरक्षा परिषद में स्थाई सदस्यता के लिए भारतीय प्रयास का समर्थन करने वाले प्रथम देशों में से एक था। फ्रांस आज भी अपने उसी पुराने रुख पर कायम है। दरअसल दोनों देशों के राजनीतिक नेतृत्व में कई द्विपक्षीय तथा अंतरराष्ट्रीय विषयों के संबंध में समान सोच है और इस समानता के विकास का मुख्य कारण दोनों देशों के नेताओं द्वारा एक-दूसरे के यहां यात्राएं करने से उत्पन हुआ सद्भाव है।

भारत मुख्य रूप से फ्रांस से मशीनरी एवं कलपुर्जे मंगाता है। भारत से फ्रांस को होने वाले निर्यात में परंपरागत एवं गैर परंपरागत सामान एवं सेवाएं शामिल हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात जो दोनों देशों के व्यापार में अहम है वह यह कि 1994 के बाद व्यापार संतुलन हमेशा भारत के पक्ष में बना हुआ है। गौर करें तो भारत व फ्रांस के मध्य नजदीकियां विकसित होने का मुख्य कारण द्विपक्षीय सहयोग के साथ-साथ फ्रांस का तीसरी दुनिया के प्रति दृष्टिकोण भी रहा है। सामरिक लिहाज से भी दोनों देशों के बीच परंपरागत जुड़ाव रहा है।

1971 के भारत-पाक युद्ध के उपरांत भारत दक्षिण एशिया में एक क्षेत्रीय शक्ति के रूप में उभरकर सामने आया। दशकों तक वह अपने रक्षा उत्पादन में पूर्व सोवियत संघ पर निर्भर रहा, लेकिन बदलते वैश्विक परिदृश्य में सामरिक सहयोग के क्षेत्र में भारत व फ्रांस की निकटता बढ़ी है। भारत को फ्रांस की ओर से राफेल युद्धक विमान प्राप्त हुए हैं। द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय सहयोगों के अतिरिक्त सद्भावना ने भी दोनों देशों के सांस्कृतिक संबंधों को नई ऊंचाई दी है। इस प्रकार जाहिर है कि दोनों देशों के नेतृत्व के बीच बढ़ती निकटता भारत और फ्रांस के हित में तो है ही साथ ही वैश्विक संतुलन साधने की दिशा में भी एक क्रांतिकारी पहल है।

GS World
Committed To Excellence

मैक्रों की भारत यात्रा का मकसद

- विदेश मंत्रालय ने कहा, प्रेसिडेंट मैंकों की यात्रा का उद्देश्य् आर्थिक, राजनीतिक और सामरिक द्विपक्षीय संबंधों को आयाम देना है।

इन मुद्दों पर दोनों देश कर रहे काम

- विदेश मंत्रालय ने कहा, 'हमने डिफेंस, समुद्री, अंतरिक्ष, सुरक्षा और ऊर्जा के क्षेत्र में लगातार सहयोग बढ़ाया है और एक साथ सभी चिंताजनक मुद्दों पर काम बढ़ा रहे हैं, इनमें आतंकवाद, जलवायु परिवर्तन, सतत वृद्धि और विकास, आधारभूत संरचना, स्मार्ट शहरीकरण, साइंस और टेक्नोलॉजी और यूथ एक्सचेंज प्रोग्राम '10.95 बिलियन डॉलर का व्यापार।
- भारत- फ्रांस के बीच द्विपक्षीय व्यापार अप्रैल, 2016 से मार्च, 2017 तक 10.95 बिलियन डॉलर का व्यापार हुआ।

भारत में बड़ा निवेशक है फ्रांस

- भारत में फ्रांस एक बड़ा निवेश करने करने वाला देश है। फ्रांस भारत में विदेशी पूंजी निवेश करने वाला 9वां सबसे बड़ा देश है। इस देश ने भारत में अप्रैल 2000 से अक्टूबर 2017 तक 6।09 बिलियन अमेरिकी डॉलर का निवेश किया है।

1000 फ्रांसीसी कंपनियां भारत में मौजूद

- लगभग 1000 फ्रांसीसी कंपनियां भारत में हैं और भारत की 120 कंपनियों ने एक बिलियन यूरो का निवेश फ्रांस में हैं और करीब 7000 कर्मचारियों की तैनाती है।

गणतंत्र दिवस पर मुख्य अतिथि थे फ्रांसीसी राष्ट्रपति

- फ्रांसीसी प्रेसिडेंट फ्रांस्वा ओलांद 26 जनवरी, 2016 को गणतंत्र दिवस समारोह में मुख्य अतिथि के तौर पर आए थे। पीएम मोदी ने जून, 2017 को फ्रांस की यात्रा पर गए थे।

भारत फ्रांस के बीच 1998 में शुरू सामरिक भागीदारी

- भारत-फ्रांस के बीच 1998 में शुरू हुई सामरिक हिस्सेंदारी एक महत्वपूर्ण व्यापक द्विपक्षीय रिश्तों की शुरुआत थी।

क्या है अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन (आईएसए)?

- अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन (International Solar Alliance) कर्क व मकर राशि के उष्णकटिबंध पर स्थित 121 देशों का गठबंधन है। यह सौर ऊर्जा पर आधारित एक सहयोग संगठन है जिसका मुख्यालय गुड़गांव (भारत) में है। इस गठबंधन का शुभारंभ भारत व फ्रांस द्वारा 30 नवम्बर, 2015 को पेरिस (फ्रांस) में किया गया। दुनिया में गैर पंरपरागत ऊर्जा को बढ़ावा देने वाले वैश्विक संगठन आईएसए का रणनीतिक भागीदार संयुक्त राष्ट्र है। इस गठबंधन का मुख्य उद्देश्य उष्णकटिबंधीय देशों को सौर ऊर्जा के उचित दोहन के लिए एक मंच पर लाना है। यह गठबंधन सौर ऊर्जा के क्षेत्र में धनी देशों को प्रचुर संसाधनों के उचित उपयोग के लिए तैयार करेगा जिससे सौर ऊर्जा के उपयोग में आने वाली भारी लागत को कम किया जा सकेगा।

आईएसए के प्रमुख उद्देश्य

- इस संगठन का उद्देश्य सौर ऊर्जा को बढ़ावा देने के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करना है।
- ऐसे देश जो पूरी तरह या आंशिक तौर पर कर्क रेखा और मकर रेखा के मार्ग में पड़ते हैं एवं सौर ऊर्जा के मामले में समृद्ध हैं, उनसे बेहतर तालमेल के जरिये सौर ऊर्जा की मांग को पूरा करना है।
- आईएसए का उद्देश्य सूर्य की बहुतायत ऊर्जा को एकत्रित करने के साथ देशों को एक साथ लाना है।
- यह सौर ऊर्जा के विकास और उपयोग में तेजी लाने की एक नई शुरुआत है, ताकि वर्तमान और भावी पीढ़ी को ऊर्जा सुरक्षा प्राप्त हो सके।

संभावित प्रश्न

प्रश्न. हाल ही में भारत के दौरे पर आये फ्रांस के राष्ट्रपति इमैन्युअल मैक्रों ने भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के साथ कई समझौतों पर हस्ताक्षर किये। इन दोनों देशों के लिए इंडो-पैसिफिक क्षेत्र के महत्व को स्पष्ट करते हुए इनके सामरिक साझेदारी की चर्चा करे।

भारत में इच्छामृत्यु

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (शासन व्यवस्था) से संबंधित है।

हाल ही में गैर-सरकारी संगठन 'कॉमन काज' द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में इच्छामृत्यु पर याचिका दायर की गयी। सर्वोच्च न्यायालय ने इच्छामृत्यु को आत्महत्या से अलग करके जीने के अधिकार से जोड़ा और कहा कि सम्मान से जीने में गरिमा के साथ मरना भी शामिल है। इस मुद्दे से जुड़े हिन्दी समाचार पत्र दैनिक जागरण एवं राष्ट्रीय सहारा में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे जी.एस. वर्ल्ड टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

अपनी इच्छा से मरने का अधिकार तो मिला, लेकिन सार्वजनिक नीति के रूप में नहीं (दैनिक जागरण)

इच्छामृत्यु को लेकर सुप्रीम कोर्ट में दाखिल अपनी याचिका में गैर सरकारी संगठन-'कॉमन कॉज' ने कहा था, 'किसी भी आदमी से यह कैसे कहा जा सकता है कि उसे अपने शरीर पर हो रहे या होने वाले अत्याचार को रोकने का अधिकार नहीं है? जीने के अधिकार में गौरव के साथ मरने का अधिकार शामिल है। किसी भी आदमी को वेंटिलेटर की सहायता से जीने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। किसी भी रोगी को उसकी इच्छा के विरुद्ध कृत्रिम साधनों से जीवित रखना उसके शरीर पर अत्याचार है।' यह जनहित याचिका 2005 में दाखिल की गई थी। इस 9 मार्च को फैसला आ गया, जिसमें इस याचिका को स्वीकार कर लिया गया।

यह दुर्भाग्य की बात है कि उच्चतम न्यायालय को इस निर्णय पर पहुंचने में पूरे 12 साल लग गए। इस बीच कई लोगों ने पत्र लिख कर राष्ट्रपति से इच्छामृत्यु की अनुमति देने का आग्रह किया, लेकिन वे असहनीय कष्ट से गुजरते रहे और अपना जीवन समाप्त नहीं कर सके, क्योंकि राष्ट्रपति से उन्हें कोई सकारात्मक जवाब नहीं मिला।

कष्टमय जीवन से मुक्ति पा सकते हैं

अब वे चाहेंगे तो अपने कष्टमय जीवन से मुक्ति पा सकेंगे। निश्चय ही मामला पेचीदा है, क्योंकि इसका संबंध जीवन और मरण से है, लेकिन उतना जटिल भी नहीं है, क्योंकि जब मृत्यु अपरिहार्य हो और शरीर बहुत कष्ट में हो तब जीते रहने का या किसी को जिलाए रखने का कोई औचित्य नहीं है। यह सही है कि मरना कोई नहीं चाहता। कई बार हम इतनी दर्द-भरी परिस्थितियों में आ जाते हैं कि पुकार उठते हैं, हे ईश्वर, मुझे उठा ले, लेकिन वास्तव में यह मरने की इच्छा नहीं है।

मरने का अधिकार (राष्ट्रीय सहारा)

सर्वोच्च न्यायालय ने इच्छामृत्यु को आत्महत्या से अलग करके जीने के अधिकार से जोड़ा और कहा कि सम्मान से जीने में गरिमा के साथ मरना भी शामिल है। यह सर्वथा उचित है। कारण यह कि इच्छामृत्यु और आत्महत्या दो अलग चीजें हैं। यदि उसे आत्महत्या के समकक्ष भी मानें तो यह विचार जरूरी होगा कि कोई व्यक्ति जीवन के अंत का निर्णय चरम हताशा या निराशा की स्थितियों में लेता है। इच्छामृत्यु में उस हताशा का स्रेत व्यक्ति के भीतर होता है, जैसे असहनीय पीड़ा जिसका जीते-जी कोई समाधान नहीं है

वोंच्च न्यायालय ने आज नौ मार्च दो हजार अठारह को एक प्रगतिशील ऐतिहासिक निर्णय में असाध्य रोग से ग्रस्त व्यक्ति को इच्छामृत्यु का कानूनी अधिकार प्रदान कर दिया। संविधानपीठ ने स्थापित कर दिया कि सम्मान से जीने के अधिकार के साथ ही गरिमापूर्ण मृत्यु का अधिकार भी मानवीय अधिकार है। इसके निहितार्थों पर अभी बहसें होंगी।

लेकिन अपनी सीमाओं के बावजूद यह निर्णय का स्वागतयोग्य है। जिन असाध्य बीमारियों में सुधार की कोई संभावना नहीं रहती, मृत्यु निश्चित रहती है लेकिन असह्य कष्ट झेलना पड़ता है, जिनमें लम्बे समय तक केवल जीवन-रक्षक प्राणियों द्वारा सांस चलाये रखी जाती है, उनमें मरीज की वसीयत के आधार पर या उसके परिजनों या मित्रों के आवेदन पर हाईकोर्ट चिकित्सकों का एक दल नियुक्त करेगा; वही दल इच्छामृत्यु के आवेदन पर फैसला लेगा और उसी की निगरानी में जीवन-रक्षक पण्राली हटाकर स्वाभाविक मृत्यु को आने दिया जायगा। इच्छामृत्यु दो तरह की है-मृत्युवरण (यूथनेसिया) और दयामरण (मर्सी किलिंग)। यह निर्णय सभी स्थितियों में लागू नहीं होगा। फिर भी यह निर्णय महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अभी इंग्लैण्ड तक में

GS World
Committed To Excellence

यह कष्ट की पराकाष्ठा का परिणाम है, जिसे हम अक्सर सहन नहीं कर पाते। ऐसी परिस्थितियों में अनेक लोग आत्महत्या करने के बारे में सोचने लगते हैं और कुछ लोग इसकी कोशिश भी करते हैं, लेकिन यह चरम हताशा की अभिव्यक्ति है और लोग जल्द ही इससे उबर भी जाते हैं और जीवन संघर्ष में लग जाते हैं।

जीवन और मृत्यु के बीच अनिवार्य संबंध है

'कॉमन कॉज' इस तरह की स्थितियों में आत्म-मृत्यु का समर्थन नहीं करता, लेकिन वह यह जरूर मानता है कि जब शरीर मेडिकल स्तर पर जवाब दे दे और आगे अपरिहार्य रूप से यंत्रणा ही यंत्रणा दिखे तो अपनी ओर से आगे बढ़कर मृत्यु का आलिंगन करने में ही मनुष्य की गरिमा है। जैसा कि इस मामले का निर्णय करने वाले पांच-सदस्यीय पीठ में से एक जज ने कहा, जीवन और मृत्यु के बीच अनिवार्य संबंध है और एक को छोड़कर दूसरे के बारे में सोचा नहीं जा सकता।

इच्छामृत्यु की तुलना आत्महत्या से नहीं की जा सकती। आत्महत्या व्यक्ति द्वारा अपने जीवन का अंत है। अभी भी मान्यता यही है कि जीवन व्यक्ति का अपना नहीं है। वह प्रकृति या ईश्वर का वरदान है और मृत्यु भी प्रकृति या ईश्वर के अधीन होनी चाहिए, फिर कोई भी व्यक्ति अकेला नहीं होता। उसके पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक संबंध होते हैं। इन क्षेत्रों में उसकी जिम्मेदारियां भी होती हैं।

अच्छा जीवन जीने वाला ही अच्छी मृत्यु की कामना कर सकता है

अगर कोई आदमी किसी निर्जन टापू में रहता है और वह अपने जीवन का अंत कर लेता है तो इससे दुनिया को कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन समाज में रहने वाले व्यक्ति द्वारा आत्महत्या के अनेक अवांछित परिणाम हो सकते हैं। आत्महत्या के निर्णय से उबर जाने वाला व्यक्ति फिर सार्थक जीवन जी सकता है और पछता सकता है कि उसने कभी मरने के बारे में सोचा था। इसके विपरीत इच्छामृत्यु की जरूरत तब पड़ती है जब चिकित्सक इस निर्णय पर पहुंच गए हों कि रोगी का बचना असंभव है और मृत्यु ही उसे असह्य शारीरिक कष्ट से छुटकारा दिला सकती है।

यह दौड़कर मौत को गले लगाना नहीं है, बल्कि होश में रहते हुए ही यह फैसला कर लेना है कि अचेतावस्था में और कृत्रिम साधनों की सहायता से कुछ और महीनों या वर्षों तक जीवित रहने का कोई अर्थ नहीं है। वास्तव में इस तरह के निर्णय से मनुष्य के जीवन में गरिमा आती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अच्छा जीवन जीने वाला ही अच्छी मृत्यु की कामना कर सकता है।

यह अधिकार विवादों के घेरे में है। नीदरलैंड, बेल्जियम, स्विट्जरलैंड, हॉलैंड जैसे कुछ देशों में और अमेरिका के कुछ राज्यों में ही इसे कानूनी दर्जा प्राप्त है। इस दृष्टि से भारत अधिक सभ्य और मानवीय दिशा में अग्रसर हुआ है।

यहां यह स्पष्ट कर लेना उपयुक्त है कि मृत्युवरण और दयामरण की तरह सक्रिय इच्छामृत्यु और निष्क्रिय इच्छामृत्यु में भी अंतर है। सर्वोच्च न्यायालय ने केवल निष्क्रिय इच्छामृत्यु को अनुमति दी है। लगभग ढाई दशक पहले जब क्रांतिकारी माकपा नेता बी.टी. रणदिवे रक्त-कैंसर की असहनीय पीड़ा झेलते हुए मुंबई के अस्पताल में मृत्यु से संघर्ष कर रहे थे तब उन्होंने इच्छामृत्यु की मांग की थी।

यह अनुमति उन्हें नहीं मिली। यदि उस समय कानून यह अनुमति देता तो यह सक्रिय इच्छामृत्यु होती क्योंकि असाध्य रोग से मुक्ति और असहनीय कष्ट के निवारण के लिए मरीज की मांग पर चिकित्सक उन्हें मृत्यु की दवा देते। इसे दयामरण भी कहा जाता है। दूसरी तरफ, लगभग तीस साल पहले बलात्कार की शिकार बनाई गई मुंबई की नर्स अरुणा शौनबाग की इच्छामृत्यु को 2014 में अदालत से अनुमति तो नहीं मिली, लेकिन उसकी स्थिति रणदिवे से अलग थी।

अरुणा सत्ताईस वर्षों से अचेत, जीवन-रक्षक पणालियों पर ही थी। उसे नहीं पता था कि वह जीवित है या नहीं, उसे कोई कष्ट है या नहीं। यदि उसे इच्छामृत्यु की अनुमति मिलती तो वह निष्क्रिय इच्छामृत्यु होती क्योंकि उसे किसी दवा की आवश्यकता नहीं थी, केवल जीवन-रक्षक पणाली हटाने की आवश्यकता थी। तब अदालत ने इसकी भी अनुमति नहीं दी थी।

हालांकि 2015 में उसे यह अधिकार मिल गया और उसे अपने कष्ट से तथा कष्ट देनेवाले संसार से मुक्ति मिल गई।हैदराबाद के एक पूर्व शतरंज खिलाड़ी वेंकटेश ने सन 2004 में अपनी मृत्यु से पहले अपनी मां के माध्यम से आंध्र प्रदेश हाईकोर्ट में अपील की थी कि उसे स्वेच्छापूर्वक मृत्यु का वरण करने दिया जाय ताकि उसके शरीर के उपयोगी अंग जरूरतमंद लोगों के काम आ सकें। उसे मांसपेशियों के क्षरण की बीमारी हो गयी थी (मस्कुलर डायस्ट्रोफी) जिसका इलाज नहीं था और सभी अंगों का तेजी से क्षय हो रहा था।

उसने और उसकी मां ने साल भर पहले अंग दान किया था। वह चाहता था कि अंग दान की अंतिम इच्छा पूरी कर सके, लेकिन मृत्यु के बाद केवल आंखें दान की जा सकीं। गुर्दा और अन्य अंग व्यर्थ हो गए थे। उसे इच्छामृत्यु की अनुमति नहीं मिली क्योंकि उसे आत्महत्या के सामान माना जाता था और यह कानूनी अपराध था। साथ ही, मानव-अंग प्रत्यारोपण कानून के अनुसार तब तक केवल

GS World
Committed To Excellence

सुप्रीम कोर्ट ने इच्छामृत्यु को व्यक्ति के अधिकार के रूप में स्वीकार किया है

अच्छे ढंग से मरना अच्छे जीवन का एक आवश्यक अंग है, लेकिन उच्चतम न्यायालय ने इच्छामृत्यु को व्यक्ति के अधिकार के रूप में स्वीकार किया है, सार्वजनिक नीति के रूप में नहीं। अर्थात अभी भी आदर्श यही रहेगा कि मृत्यु से बचाने के लिए तमाम चिकित्सकीय उपाय किए जाएं और दवा या सेवा-सुश्रषा के अभाव में किसी को मरने के लिए न छोड़ दिया जाए।

ऐसा करना मानवता के प्रति अपराध होगा। प्रत्येक मनुष्य जीना चाहता है। कह सकते हैं, कठिन से कठिन परिस्थिति में भी जीना चाहता है। साधनों के अभाव में उसे मरना पड़े, यह एक विकृत स्थिति है। किसी भी समाज में ऐसी स्थितियां पैदा नहीं होनी चाहिए, बल्कि कहिए कि यह एक अच्छे समाज की अनिवार्य पहचान है कि वह प्रत्येक व्यक्ति को उसकी अंतिम सांस तक जिलाए रखने का प्रयास करता है।

इच्छामृत्यु का प्रावधान अनिच्छित मृत्यु के लिए नहीं है

इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि इच्छामृत्यु का प्रावधान अनिच्छित मृत्यु के लिए नहीं है यानी यह नहीं होना चाहिए कि कोई मरणासन्न रोगी अपने खर्चे से इलाज नहीं कर सकता या उसके परिवार के लोग उसके उपचार का खर्च वहन नहीं कर सकते तो उसका इलाज नहीं किया जाए और उसे मरने के लिए छोड़ दिया जाए। उसके इलाज का खर्च सामाजिक संस्थाओं या सरकार को उठाना चाहिए, लेकिन ऐसी भी परिस्थितियां पैदा हो सकती हैं जब कोई साल-दर-साल कोमा में पड़ा रहे।

आखिर ऐसे उदाहरण हैं कि 10-10, 15-15 वर्षों तक कोमा में रहने के बाद लोग होश में आए हैं और स्वस्थ जीवन जी सकने में सक्षम हुए हैं। ऐसे मामलों में क्या किया जाए, यह एक नैतिक दुविधा का मामला है। अगर उसके परिवार के लोग या वारिस अनंत काल तक इंतजार कर सकते हैं और ऐसे व्यक्ति को जीवित रखने का खर्च वहन कर सकते हैं तो इसकी अनुमति अवश्य मिलनी चाहिए, लेकिन जब मामला सरकारी खर्च का हो तब व्यावहारिकता की समस्याएं पैदा हो जाती हैं। किसी भी सरकार के पास सार्वजनिक स्वास्थ्य पर खर्च करने के लिए अनंत राशि नहीं होती।

अत: उसे तय करना ही पड़ेगा कि कुछ रोगियों को अनिश्चित समय तक वेंटिलेटर पर रखने का खर्च वहन किया जाए या एक तय अवधि के बाद 'होपलेस केस' मान कर पैसा बचाया जाए ताकि अन्य ऐसे रोगियों का इलाज किया जा सके, जिनका जीवन बचाया जा सकता है। यह अवधि क्या हो, यह एक कठिन प्रश्न है, क्योंकि रोज नई-नई जीवनरक्षक दवाओं का आविष्कार हो रहा है।

उसी व्यक्ति के अंग निकले जा सकते थे, जिसका मस्तिष्क किसी करण से मृत हो गया हो।

अन्यथा उसे चिकित्साशास्त्रीय दृष्टि से मृत नहीं माना जा सकता और जीवित व्यक्ति के अंगों को निकलना भी अपराध है। इस तरह इच्छामृत्यु के प्रसंग में अनेक विषय उलझे हुए हैं, जिनके दायरे में नैतिक और कानूनी, सामाजिक और चिकित्साशास्त्रीय, जीववैज्ञानिक और मानवाधिकार सम्बन्धी विभिन्न दृष्टिकोण आते हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में इच्छामृत्यु को आत्महत्या से अलग करके जीने के अधिकार से जोड़ा और कहा कि सम्मान से जीने में गरिमा के साथ मरना भी शामिल है। यह सर्वथा उचित है।

कारण यह कि इच्छामृत्यु और आत्महत्या दो अलग चीजें हैं। यदि उसे आत्महत्या के समकक्ष भी मानें तो यह विचार करना जरूरी होगा कि कोई व्यक्ति जीवन के अंत का निर्णय चरम हताशा या निराशा की स्थितियों में लेता है। इच्छामृत्यु में उस हताशा का ग्रेत व्यक्ति के भीतर होता है, जैसे असहनीय पीड़ा जिसका जीते-जी कोई समाधान नहीं है लेकिन अपने निर्णय को लागू करने के लिए उसे दूसरों की सहायता की आवश्यकता होती है; आत्महत्या जीवन की जिस चरम हताशा की अभिव्यक्ति है, उसके ग्रेत व्यक्ति के बाहर होते हैं, लेकिन अपने निर्णय को क्रियान्वित करने के लिए उसे दूसरों की सहायता की आवश्यकता नहीं होती।

होने को आत्महत्या और इच्छामृत्यु दोनों ही ''मृत्यु का वरण' हैं, लेकिन इच्छामृत्यु किसी शारीरिक कष्ट के असह्य हो जाने का परिणाम है जिस कष्ट में उसे जीवित रखना-उसकी सहनशक्ति और इच्छा के विपरीत, बेहोशी की दवाओं के सहारे, केवल सांस चलाते रहना-एक प्रकार की क्रूरता है।

अदालत ने कम-से-कम कुछ मामलों में मरीजों के इस मानवीय हक को मान्यता दी।जिस ''लिविंग विल' को कानूनी मान्यता मिली है, वह मजिस्ट्रेट के सामने लिखी हुई वसीयत है। यदि मरीज ने खुद ऐसी वसीयत नहीं लिखी है तो उसकी असाध्य दशा में उसके निकट सम्बन्धी या मित्र लिखित आवेदन कर सकते हैं, जिसकी जांच करके उच्च न्यायालय एक चिकित्सक दल नियुक्त करेगा, उस दल के सुझाव पर और उसकी देखरेख में कार्रवाई संपन्न होगी।

बेशक यह निष्क्रिय इच्छामृत्यु की मान्यता है, क्योंकि ऐसे में खुद मरीज अपनी मृत्यु नहीं चुनता बल्कि उसकी जीवन-रक्षक पण्रालियों को हटा दिया जाता है ताकि वह जीवित रहकर जो असहनीय कष्ट पा रहा है, उससे मुक्त हो सके। फिर भी यह एक कदम आगे की स्थिति है।

GS World
Committed To Excellence

क्या है मामला?

- सुप्रीम कोर्ट की पांच जजों की संविधान पीठ ने आदेश दिया है कि असाध्य रोग से ग्रस्त व्यक्ति ने उपकरणों के सहारे उसे जीवित नहीं रखने के संबंध में यदि लिखित वसीयत दिया है, तो यह वैध होगा।
- सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि वसीयत का पालन कौन करेगा और इस प्रकार की इच्छा मृत्यु के लिए मेडिकल बोर्ड किस प्रकार हामी भरेगा, इस संबंध में वह पहले ही दिशा-निर्देश जारी कर चुका है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि इस संबंध में कानून बनने तक उसकी ओर से जारी दिशा-निर्देश और हिदायत प्रभावी रहेंगे।

क्या है लिविंग विल?

- लिविंग विल में कोई भी व्यक्ति जीवित रहते वसीयत कर सकता है कि लाइलाज बीमारी से ग्रस्त होकर मृत्यु शैय्या पर पहुंचने पर शरीर को जीवन रक्षक उपकरणों पर न रखा जाए।
- लिविंग विल एक लिखित दस्तावेज होता है जिसमें कोई मरीज पहले से यह निर्देश देता है कि मरणासन्न स्थिति में पहुंचने या रजामंदी नहीं दे पाने की स्थिति में पहुंचने पर उसे किस तरह का इलाज दिया जाए।

क्या है निष्क्रिय इच्छा मृत्यु?

- सुप्रीम कोर्ट ने मरणासन्न व्यक्ति द्वारा इच्छा मृत्यु के लिए लिखी गई वसीयत (लिविंग विल) को मान्यता दी है। लिविंग विल एक लिखित दस्तावेज होता है जिसमें कोई मरीज पहले से यह निर्देश देता है कि मरणासन्न स्थिति में पहुंचने या रजामंदी नहीं दे पाने की स्थिति में पहुंचने पर उसे किस तरह का इलाज दिया जाए। निष्क्रिय इच्छा मृत्यु (पैसिव यूथेनेशिया) वह स्थिति है जब किसी मरणासन्न व्यक्ति की मौत की तरफ बढ़ाने की मंशा से उसे इलाज देना बंद कर दिया जाता है।

क्या है सक्रिय इच्छा मृत्यु?

- सक्रिय इच्छामृत्यु वह है जिसमें चिकित्सा पेशेवर या कोई अन्य व्यक्ति कुछ जानबूझकर ऐसा करते हैं जो मरीज के मरने का कारण बनता है। सक्रिय इच्छामृत्यु भारत समेत दुनिया के अधिकांश हिस्सों में नहीं है।
- सिर्फ कुछ देशों में यह प्रचलन में है। इसमें रोगियों को घातक इंजेक्शन देकर मौत दे दी जाती है। सक्रिय इच्छामृत्यु को लेकर नैतिकता का मुद्दा दुनिया भर में बहस का विषय है।
- एक वाक्य में कहें तो एक्टिव यूथेनेशिया वह है, जिसमें मरीज की मृत्यु के लिये कुछ किया जाए, जबकि पैसिव यूथेनेशिया वह है जहाँ मरीज की जान बचाने के लिये कुछ न किया जाए।
- सक्रिय इच्छा मृत्यु के मामले में ठीक न हो सकने वाले बीमारी की हालत में किसी मरीज को उसकी इच्छा से मृत्यु दी जाती है। सुप्रीम कोर्ट में सक्रिय इच्छा मुत्यु पर कोई सुनवाई नहीं है। देखा जाये तो, ब्रिटेन, स्पेन, फ्रांस और इटली जैसे यूरोपीय देशों सहित दुनिया के ज्यादातर देशों में इच्छा मृत्यु गैर-कानूनी है।

इन देशों में मौजूद है इच्छा मृत्यु का कानून

- **अमेरिका**- यहां सक्रिय इच्छा मृत्यु गैर-कानूनी है, लेकिन ओरेगन, वॉशिंगटन और मोंटाना राज्यों में डॉक्टर की सलाह और उसकी मदद से मरने की इजाजत है।
- **स्विट्जरलैंड**- यहां खुद से जहरीली सुई लेकर आत्महत्या करने की इजाजत है, हालांकि इच्छा मृत्यु गैर-कानूनी है।
- **नीदरलैंड्स**- यहां डॉक्टरों के हाथों सक्रिय इच्छा मृत्यु और मरीज की मर्जी से दी जाने वाली मृत्यु पर दंडनीय अपराध नहीं है।
- **बेल्जियम**- यहां सितंबर, 2002 से इच्छा मृत्यु वैधानिक हो चुकी है।

* * *

संभावित प्रश्न

प्रश्न. "हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक ऐतिहासिक फैसले में कहा कि गरिमा के साथ मृत्यु एक मौलिक अधिकार है।" निष्क्रिय इच्छा मृत्यु को समझाते हुए सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का समालोचनात्मक परीक्षण कीजिये।

फाइनेंशियल एक्शन टास्क फोर्स

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (अंतर्राष्ट्रीय संबंध) से संबंधित है।

फाइनेंशियल एक्शन टॉस्क फोर्स यानी एफएटीएफ ने पाकिस्तान को 'ग्रे' सूची में डालने की तैयारी कर ली है। इस फैसले से दुनिया में एक बड़ा संदेश भी गया है कि कुछेक राष्ट्रों में कूटनीतिक दृष्टिकोण से ज्यादातर मुद्दों पर सहमति न हो तब भी आतकंवाद के खिलाफ वे एक साथ आ सकते हैं। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्र दैनिक जागरण एवं नवभारत टाइम्स में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे जी.एस. वर्ल्ड टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

आतंकी पोषित पाक पर चला एफएटीएफ का डंडा, देश की अर्थव्यवस्था होगी बदतर (दैनिक जागरण)

फाइनेंशियल एक्शन टास्क फोर्स यानी एफएटीएफ ने पाकिस्तान को 'ग्रे' सूची में डालने की तैयारी कर ली है। यह उन देशों की ऐसी निगरानी सूची होती है जो आतंकी समूहों तक वित्तीय संसाधनों की आपूर्ति को सक्षम रूप से नहीं रोक पाते। हालांकि अभी तक इसकी आधिकारिक घोषणा नहीं हुई है, फिर भी एक आर्थिक कदम के रूप में पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था को इस फैसले की भारी कीमत चुकानी पड़ेगी, क्योंकि इससे अंतरराष्ट्रीय वित्तीय लेनदेन मुश्किल और महंगे हो जाएंगे। विशेषकर पाकिस्तानी बैंकों में वैश्विक भरोसे में कमी आएगी। साथ ही ऐसे लेनदेन गहन निगरानी के दायरे में भी आ जाएंगे और पाकिस्तान के सामान्य अंतरराष्ट्रीय वित्तीय लेनदेन में देरी भी होगी। पाकिस्तान किसी भी सूरत में ऐसी स्थिति में नहीं पड़ना चाहेगा खासतौर से तब जब वह एफएटीएफ के निशाने पर आकर पहले भी इसका खामियाजा भुगत चुका है जब 2012 से 2015 के बीच उसे 'ग्रे' सूची में डाल दिया गया था। एफएटीएफ के निर्णय के जहां पाकिस्तान के लिए गंभीर आर्थिक निहितार्थ हैं वहीं इसके राजनीतिक एवं कूटनीतिक हालात भी उसके लिए और भी ज्यादा चिंता का सबब हैं।

चीन ने पाक को निगरानी सूची में डालने के प्रस्ताव का विरोध किया

पेरिस में हुई हालिया बैठक में पाकिस्तान पर शिकंजा कसने की तैयारी से पहले शुरुआती चर्चा में चीन, सऊदी अरब और तुर्की ने पाक को निगरानी सूची में डालने के प्रस्ताव का विरोध किया। विरोध को लेकर उनकी दलील यही थी कि पाकिस्तान को तीन महीनों की मोहलत दी जाए ताकि वह बैंकिंग क्षेत्र में जरूरी कदम उठाकर एफएटीएफ को संतुष्ट कर सके और यदि इसके बाद भी वह इस पैमाने पर खरा न उतरे तो उसे निगरानी सूची में डाला जाए। पाकिस्तान ने सोचा कि अपने मित्रों की मदद से उसने यह मोहलत हासिल कर ली है। यहां तक कि पाकिस्तानी विदेश मंत्री ख्वाजा आसिफ ने भी इस मोर्चे पर अपने मुल्क की कामयाबी को लेकर ट्वीट भी कर दिया। वहीं अमेरिका पाकिस्तान को ऐसी किसी भी रियायत के लिए तैयार नहीं था। उसने सऊदी अरब को मजबूर किया कि वह पाकिस्तान को घेरने में उसकी मदद करे। उसने पाकिस्तान

ग्रे लिस्ट में पाकिस्तान (नवभारत टाइम्स)

पैरिस में शुक्रवार को फाइनैंशल ऐक्शन टास्क फोर्स (एफएटीएफ) की मीटिंग हुई जिसमें पाकिस्तान को फिर से -सुनव;ग्रे लिस्ट-तुनव; वाले देशों में शामिल करने का फैसला लिया गया। इसका औपचारिक ऐलान अभी बाकी है। एफएटीएफ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर टेरर फंडिंग और मनी लॉन्ड्रिंग पर नजर रखने वाली संस्था है। इसके पहले 2012 से 2015 तक पाकिस्तान को ग्रे लिस्ट में रखा गया था।

इस फैसले से दुनिया में एक बड़ा संदेश भी गया है कि कुछेक राष्ट्रों में कूटनीतिक दृष्टिकोण से ज्यादातर मुद्दों पर सहमति न हो तब भी आतंकवाद के खिलाफ वे एक साथ आ सकते हैं। एफएटीएफ के 39 सदस्य देशों में से तुर्की को छोड़कर बाकी सभी ने अमेरिका की ओर से पाकिस्तान के खिलाफ पेश किए गए प्रस्ताव का समर्थन किया। इसमें अर्से बाद चीन द्वारा आतंकवाद के मुद्दे पर पाकिस्तान का साथ छोड़ना भारत के लिए उम्मीद बंधाने वाली बात है। बहरहाल, इस आधार पर ज्यादा खुशफहमी नहीं होनी चाहिए, क्योंकि पाकिस्तान को ग्रे लिस्ट में शामिल करने के प्रस्ताव को समर्थन देने के अलावा चीन के पास कोई चारा भी नहीं था।

चीन खुद भी अपने शिनच्यांग प्रांत में आतंकवाद का भुक्तभोगी है। अभी वह इस मुद्दे पर विश्व बिरादरी से अलग खड़ा होता है तो कल किसी भयानक घटना के समय उसका साथ देने कोई आगे नहीं आएगा।

वैसे, पाकिस्तान को अपना भाई मानने के रवैये पर चीन आज भी कायम है और इसकी वजह सिर्फ चीन-पाक आर्थिक गलियारे का निवेश और -सुनव;वन बेल्ट वन रोड-तुनव; की उसकी वृहद योजना नहीं है। -सुनव;ग्रे लिस्ट-तुनव; देशों में शामिल होने के बाद पाकिस्तान से होने वाली हर अंतरराष्ट्रीय वित्तीय लेन-देन पर कड़ी निगरानी रखी जाएगी, जिससे उसकी अर्थव्यवस्था और बिगड़ सकती है।

दुनिया भर की बड़ी कंपनियां पाकिस्तान में निवेश करने से बचेंगी। आईएमएफ और वर्ल्ड बैंक भी उसे लोन देने से बचना चाहेंगे। पाकिस्तान के कारोबारियों पर भी इसका असर पड़ेगा और वे अपने राजनेताओं पर रवैया बदलने के लिए दबाव डाल सकते हैं।

पिछले महीने ही अमेरिका ने उसे दी जाने वाली करोड़ों डॉलर की सैन्य सहायता रोक दी। दबाव पड़ने पर वह अफगानिस्तान में सक्रिय आतंकी संगठनों के खिलाफ सख्त रुख अपनाता है, लेकिन

GS World
Committed To Excellence

को लेकर एक और बैठक बुलाने की मांग की। ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी ने अमेरिका का समर्थन किया। वहीं चीन भी दीवार पर लिखी इबारत को भांप चुका था।

भारत को निशाना बनाना जारी रखता है। यह रवैया बदलने तक उस पर दबाव बनाए रखना चाहिए।

पाकिस्तान एफएटीएफ के निशाने पर

पाकिस्तानी मीडिया में आई एक रिपोर्ट के अनुसार चीन ने पाकिस्तान को सूचित किया कि वह अगले दौर में चर्चा और मतदान से किनारा करेगा। अब केवल तुर्की पाकिस्तान के साथ रह गया। हालिया दौर में अमेरिका के साथ तुर्की के रिश्ते भी कुछ तल्ख हुए हैं। आखिरकार एफएटीएफ ने पाकिस्तान को तब तक के लिए निगरानी सूची में डालने का फैसला किया जब तक कि वह वित्तीय संस्थानों को पूरी तरह चाकचौबंद कर यह सुनिश्चित नहीं करता कि वे किसी भी तरह आतंकियों द्वारा इस्तेमाल होने की आशंकाओं को खारिज करेंगे। चूंकि इस प्रक्रिया में तीन महीने का समय लगेगा तो अंतिम फैसला एफएटीएफ की अगली बैठक में ही लिया जाएगा। यदि पाकिस्तान कोई स्वीकार्य योजना पेश नहीं करता तो एफएटीएफ उसे काली सूची में भी डाल सकता है। फिलहाल केवल ईरान और उत्तरी कोरिया ही काली सूची में शामिल हैं।

चीन एफएटीएफ को लेकर अमेरिका से पंगा मोल नहीं लेगा

सुरक्षा और विदेश नीति को संचालित करने वाली पाकिस्तानी सेना राहत के लिए हमेशा अपने सदाबहार दोस्त चीन पर भरोसा करती है। वह यह मानकर चल रही थी कि एफएटीएफ जैसी मुश्किल से चीन उसे बाहर निकाल लेगा, लेकिन इस बार चीन ने ऐसा नहीं किया। उसने फैसला किया कि वह अमेरिका से पंगा मोल नहीं लेगा, क्योंकि शायद उसे कामयाबी भी न मिले। इसका अर्थ यह नहीं कि चीन सभी मामलों में पाकिस्तान को उसके हाल पर यूं ही छोड़ देगा।

क्या पाकिस्तान आतंकी संगठनों पर लगाम लगाएगा?

भारत को यह उम्मीद बिल्कुल भी नहीं करनी चाहिए कि मसूद अजहर को आतंकियों की सूची में डालने और भारत को परमाणु आपूर्तिकर्ता देशों यानी एनएसजी में जगह दिलाने में वह किसी तरह की मदद करेगा। इसके बावजूद पाकिस्तान इससे जरूर सबक लेगा कि अगर अमेरिका उस पर दबाव बनाने को लेकर अपने रुख पर अड़ जाए तो फिर उसके मित्र भी उसकी मदद नहीं कर पाएंगे। क्या इसका अर्थ यह है कि पाकिस्तान लश्कर-ए-तोइबा, जैश-ए-मोहम्मद और हिजबुल मुजाहिदीन जैसे आतंकी संगठनों पर लगाम लगाएगा?

पाकिस्तान आतंकी नीति के चलते दुनिया भर में अलग-थलग पड़ सकता है

इस बारे में अभी कुछ कहना कठिन है, लेकिन एफएटीएफ की कार्रवाई के तुरंत बाद पाकिस्तान के सबसे प्रभावशाली अखबार डॉन के संपादकीय पर गौर करना खासा उपयोगी होगा जिसका मजमून कुछ इस तरह है, 'अब यह लगातार स्पष्ट होता जा रहा है कि पाकिस्तान अपनी उस नीति के चलते दुनिया भर में अलग-थलग पड़ता जा रहा है जिसके तहत यह कहा जाता है कि वह अपनी आधिकारिक नीति में आतंकी कहे जाने वाले समूहों को प्रश्रय देता है।' भारत भी दो दशकों से यही कहता आ रहा है। अब पाकिस्तान के सबसे प्रतिष्ठित समाचार पत्र ने भी यह स्वीकार किया है। क्या पाकिस्तानी फौज के जनरल इस चेतावनी को गंभीरता से लेंगे? इसमें कोई संदेह नहीं कि अमेरिकी कार्रवाई पाकिस्तानी फौज को जरूर चिंता में डालेगी जो अभी तक यही माने बैठी थी कि राष्ट्रपति ट्रंप की तमाम कड़ी चेतावनियों के बावजूद उनकी अफगानिस्तान और दक्षिण एशिया नीति उनके पूर्ववर्ती राष्ट्रपतियों से ज्यादा अलग नहीं होगी। पाकिस्तानी सेना यह भी सोचकर चल रही थी कि ट्रंप इतना दबाव नहीं बढ़ाएंगे कि उसे दूसरे देशों में आतंक फैलाने वाले आतंकी समूहों पर लगाम लगानी पड़े।

GS World
Committed To Excellence

पाकिस्तान के खिलाफ एफएटीएफ की कार्रवाई रंग लाएगी

एफएटीएफ बैठक में अमेरिकी प्रस्ताव दर्शाता है कि पाकिस्तानी जनरलों को कुछ न कुछ दिखावटी कदम जरूर उठाने होंगे, लेकिन क्या वे इन समूहों को जड़ से खत्म करने की सोचेंगे? जब तक इस मामले में कोई पुख्ता संकेत नहीं मिलते तब तक इस सवाल का जवाब नहीं ही होगा। इसकी तमाम वजहें हैं। पाकिस्तान की विदेश और रक्षा नीतियां भारत केंद्रित हैं। पाकिस्तान भारत को स्थाई खतरे और दुश्मन के तौर पर देखता है। भारत से तथाकथित खतरे की काट के लिए उसने ऐसा सुरक्षा सिद्धांत अपना लिया है जिसके एक सिरे पर परमाणु बम है तो दूसरे पर आतंकी समूह। ऐसा इसलिए, क्योंकि उसके सुरक्षा बल भारत से कमजोर हैं।

आतंकी समूहों ने पाकिस्तानी समाज और सियासत में गहरी जड़ें जमा ली हैं

आतंकी समूहों का इस्तेमाल उसके सुरक्षा सिद्धांत का अहम पहलू है। उनके जरिये पाकिस्तान भारत को रक्षात्मक बनाकर कश्मीर के मामले में दखल चाहता है। पाकिस्तानी सेना विकल्पहीनता की स्थिति में ही आतंकी समूहों को तिलांजलि देगी। एफएटीएफ की कार्रवाई दबाव बढ़ाएगी, लेकिन यह सेना में बदलाव के लिहाज से नाकाफी होगा। आतंकी समूहों ने पाकिस्तानी समाज-सियासत में भी गहरी जड़ें जमा ली हैं। सबसे प्रभावशाली प्रांत पंजाब में उन्हें व्यापक समर्थन हासिल है। इन समूहों पर कड़ी कार्रवाई से असंतोष और यहां तक कीं हंसक गतिविधियां भी फैल सकती हैं। सेना के लोगों के लिए भी इन समूहों के नेता नायक वाला दर्जा रखते हैं। ध्यान रहे कि पूर्व राष्ट्रपति और सेना प्रमुख रहे जनरल परवेज मुशर्रफ़ आतंकी हाफिज सईद को हीरो बता चुके हैं।

GS World टीम...

चर्चा में क्यों?

पूरे विश्व में आतंकवाद को मिलने वाली वित्तीय सहायता पर नजर रखने वाली संस्था 'फाइनेंशियल ऐक्शन टास्क फोर्स' (जेम थ्पदंदबपंस ।बजपवद जें थ्वतबम -थज्थ्) ने पाकिस्तान से 3 महीने के भीतर 'टेरर फंडिग' (आतंक का वित्तपोषण) पर रिपोर्ट मांगी है। हाल ही में अर्जेन्टीना की राजधानी ब्यूनस आयर्स में समूह की बैठक में यह निर्णय लिया गया।

ब्यूनस आयर्स बैठक से संबंधित महत्त्वपूर्ण बिंदु

- विदित हो कि बैठक में भारत ने 'टेरर फंडिग' का मुद्दा उठाते हुए पाकिस्तान पर सुरक्षा परिषद के आदेशों को दरकिनार करने और आतंकी वित्त पोषण में संलिप्त होने की बात कही थी।
- तत्तपश्चात् एफएटीएफ ने पाकिस्तान को निगरानी सूची में डाल दिया और फरवरी 2018 तक यानी 3 माह के अंदर जवाब देने का निर्देश दिया है। भारत वैश्विक मंचों पर पाकिस्तान की ओर से समर्थित आतंकवाद और आतंकी समूहों के मुद्दे को उठाता रहा है और इस बार भी भारत ने ऐसा ही किया।
- लेकिन, ब्यूनस आयर्स में आयोजित एफएटीएफ की बैठक में भी चीन ने मसूद अजहर को वीटो लगाकर बचाने की तरह ही पाकिस्तान को इस मामले में भी बचाने की कोशिश की थी, लेकिन दो वक्ताओं ने भारत का समर्थन किया जिसके बाद चीन अलग-थलग पड़ गया।
- पाकिस्तान के केंद्रीय बैंक स्टेट बैंक ऑफ पाकिस्तान को आतंकी समूहों के बैंकिंग खाते बंद करने का निर्देश दिया गया है। साथ ही उसे यह भी बताना होगा कि आतंकियों के वित्तीय ढाँचे को प्रतिबंधित करने के लिये क्या कदम उठाए गए हैं?
- इसके अलावा टेरर फंडिंग से जुड़ी जानकारी साझा करने और उसके खिलाफ तुरंत कार्रवाई करने के निर्देश भी दिये गए हैं।

क्या है फाइनेंशियल ऐक्शन टास्क फोर्स?

- फाइनेंशियल ऐक्शन टास्क फोर्स वर्ष 1989 में जी-7 की पहल पर स्थापित एक अंत: सरकारी संस्था है।
- इसका उद्देश्य 'टेरर फंडिंग', 'ड्रग्स तस्करी' और 'हवाला कारोबार' पर नजर रखना है।
- क्यों महत्त्वपूर्ण है फाइनेंशियल ऐक्शन टास्क फोर्स?
- फाइनेंशियल ऐक्शन टास्क फोर्स किसी देश को निगरानी सूची में डाल सकती है और उसके बावजूद कार्रवाई न होने पर उसे 'खतरनाक देश' घोषित कर सकती है।
- उत्तर कोरिया, ईरान और युगांडा को भी इस सूची में डाला गया है। उल्लेखनीय है कि अंतर्राष्ट्रीय बैंकिंग सिस्टम और अमेरिका जैसे देश इसकी रिपोर्ट का कड़ाई से पालन करते हैं।

संभावित प्रश्न

प्रश्न. हाल ही में चर्चा में रहे 'फाइनेंशियल ऐक्शन टास्क फोर्स' से आप क्या समझते है? क्या पाकिस्तान के लिए 'फाइनेंशियल ऐक्शन टास्क फोर्स' आने वाले समय में आर्थिक के साथ साथ कूटनीतिक चिंता का सबब बनेगा? स्पष्ट कीजिये।

अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस : 8 मार्च

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-1 (सामाजिक मुद्दा) से संबंधित है।

हाल ही में 8 मार्च को पूरे विश्व में अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया गया। अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर सूचना माध्यमों से स्त्री अस्मिता से जुड़े तमाम मुद्दों पर गंभीर विमर्श नजर आता है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्र दैनिक ट्रिब्यून, अमर उजाला एवं बिजनेस स्टैंडर्ड में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे जी.एस. वर्ल्ड टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

बराबरी की बात (दैनिक ट्रिब्यून)

अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर सूचना माध्यमों में स्त्री अस्मिता से जुड़े तमाम मुद्दों पर गंभीर विमर्श नजर आता है। सर्वेक्षणों की विश्वसनीयता व तौर-तरीकों को नजरअंदाज कर दें तो भी कोई स्पष्ट तस्वीर नजर नहीं आती। नि:संदेह महिलाओं की हैसियत में आजादी के बाद व्यापक बदलाव आया है। तरक्की के आंकड़ों की बात करें तो सरकारी तस्वीर में उजली और स्वतंत्र आंकड़ों में धुंधली तस्वीर नजर आती है।

बावजूद इसके बहुत कुछ बदला है। किसी समाज की सभ्यता का पैमाना स्त्री के प्रति नजरिये से तय होता है कि समाज का महिलाओं के साथ कैसा व्यवहार है। स्त्री की सुकोमल प्रवृत्ति और विशिष्ट जैविक गुणों को आधार मानें तो तार्किक रूप से स्त्री को पुरुष के बराबर ला पाना संभव नजर नहीं आता। मगर यहां यह जरूरी है कि उसको तरक्की के मौकों व समता के अधिकारों को पर्याप्त सम्मान मिले। उसके हक व मेहनताने से भेदभाव न हो।

एक सर्वेक्षण बताता है कि भारत में महिला व पुरुषों के वेतन में बीस फीसदी का अंतर है। बीसीसीआई द्वारा हाल ही में घोषित अनुबंध पर नजर डालें तो जहां पुरुष खिलाड़ी का मेहनताना ए प्लस श्रेणी में सात करोड़ रुपये है वहीं महिला क्रिकेटरों का ए श्रेणी में महज पचास लाख।

नि:संदेह यह उदाहरण भारतीय समाज के एक काले सच को उजागर करता है। कहा जा सकता है कि पुरुष क्रिकेट का बाजार बड़ा है और आय भी। मगर यह अंतर बहुत ज्यादा है जो अन्याय का ही प्रतीक है। समाज में इसी भेदभाव की सोच को खत्म कीजिये। देश की शीर्ष लोकतांत्रिक संस्थाओं में तैंतीस फीसदी महिला आरक्षण का विरोध करने वालों पर रोक कैसे लगेगी। पिछले सात दशक में महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ, मगर अपेक्षा के स्तर तक नहीं हुआ। हम गर्व कर सकते हैं कि देश में रक्षा मंत्री, फाइटर प्लेन चलाने व सीमा पर मोर्चा संभालने का दायित्व आज महिलाएं निभा रही हैं।

नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे की रिपोर्ट बताती है कि 95 फीसदी पुरुष पारिवारिक मामलों में पत्नियों की राय को प्राथमिकता देते हैं। तीन-चौथाई महिलाएं परिवार के स्वास्थ्य संबंधी फैसले लेती हैं। वर्ष 2006 के मुकाबले कमाऊ पत्नियों की संख्या दुगनी हुई है। कुल 53 फीसदी महिलाओं के बैंक अकाउंट हैं।

43 फीसदी कामकाजी महिलाएं पति के बराबर या अधिक कमा रही हैं। कुल 82 फीसदी कामकाजी महिलाएं अपनी मर्जी से खर्च कर रही हैं। हरियाणा में 43 फीसदी महिला सरपंच हैं। मगर काला सच यह भी है कि हर मिनट में 38 महिलाओं पर अपराध होते हैं। फिर भी वे अपनी राह पर निकल पड़ी हैं, पुरुषों को उनकी राह आसान करनी है।

महिला आरक्षण और कब (अमर उजाला)

लोकसभा और विधानसभाओं में महिलाओं के लिए 33 फीसदी आरक्षण के लिए संविधान संशोधन करने का यह सबसे अच्छा समय है। महिला आरक्षण के लिए संविधान संशोधन 108 वां विधेयक राज्यसभा में पहले से पारित है। यह विधेयक 2010 में राज्यसभा में पारित हुआ, पर तब यह लोकसभा में पारित नहीं हो पाया था और 2014 में लोकसभा भंग होने के साथ ही यह रद्द हो गया था। चूंकि राज्यसभा स्थायी सदन है, इसलिए यह बिल अभी जिंदा है। अब लोकसभा इसे पारित कर दे, तो राष्ट्रपति की मंजूरी के बाद यह कानून बन जाएगा। 2019 के लोकसभा चुनाव नए कानून के तहत हो सकते हैं और नई लोकसभा में 33 फीसदी महिलाएं आ सकती हैं। लेकिन ऐसा करने के लिए अब सिर्फ एक साल का समय बचा है।

कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी ने यह कहकर, कि केंद्र में कांग्रेस की सरकार आएगी, तो वह महिला आरक्षण बिल लाएगी, गेंद भाजपा के पाले में डाल दी है। महिला आरक्षण के लिए संविधान संशोधन विधेयक लाने वाली पार्टी होने के नाते इस मायने में कांग्रेस की प्रतिबद्धता जाहिर है। अपनी सरकार रहते हुए कांग्रेस इसे राज्यसभा में पारित भी करा चुकी है। इसके अलावा कांग्रेस की सरकार 1993 में ही पंचायतों में महिला आरक्षण लागू कर चुकी है, जो पंचायतों में सफलतापूर्वक चल रही है। अब राजग और भाजपा को साबित करना है कि महिला आरक्षण के सवाल पर वे गंभीर और ईमानदार हैं। अगर भाजपा और राजग वर्तमान लोकसभा में महिला आरक्षण बिल लाते हैं, तो पूरी संभावना है कि कांग्रेस का समर्थन उसे मिल जाएगा। यदि कांग्रेस ऐसा नहीं करती है, तो महिला समर्थक होने का उसका दावा खत्म हो जाएगा।

जो लोग महिला आरक्षण विधेयक के मौजूदा स्वरूप का विरोध कर रहे हैं, वे भी कह रहे हैं कि राजनीति में महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़े। उनकी चिंता इस विधेयक के सामाजिक असर को लेकर है। मौजूदा विधेयक का विरोध करने वालों का तर्क है कि इसमें पिछड़ी जाति और अल्पसंख्यक महिलाओं के लिए अलग से कोई प्रावधान नहीं है। अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए महिला आरक्षण के अंदर आरक्षण की व्यवस्था है। मौजूदा विधेयक का विरोध करने वाले चाहते हैं कि यही प्रावधान यानी आरक्षण के भीतर आरक्षण ओबीसी और अल्पसंख्यकों के लिए भी हो।

दरअसल भारतीय समाज कई स्तरों में विभाजित है। लिंगभेद यहां का अकेला विभाजन नहीं है। भारत में सभी औरतें समान नहीं हैं।

GS World
Committed To Excellence

श्रमशक्ति में महिलाओं की मौजूदगी बढ़ाना आसान नहीं (बिजनेस स्टैंडर्ड)

पूरी दुनिया ने पिछले ही सप्ताह अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस मनाया है। इसी दौरान भारत के लिए एक अच्छी खबर सामने आई। संयुक्त राष्ट्र बाल कोष (यूनिसेफ) की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में बाल विवाह की जद में आने वाली लड़कियों की संख्या पिछले दशक में काफी कम हुई है।

पिछले10 वर्षों में बाल विवाह की घटनाओं में सर्वाधिक कमी दक्षिण एशिया में देखी गई है। भारत के बड़े इलाकों में प्रगति होने से 18 साल से कम उम्र में लड़कियों की शादी के मामले एक तिहाई से भी कम हो चुके हैं। वैसे यह सच है कि अब भी भारत में 27 फीसदी लड़कियों की शादी वयस्क होने से पहले ही हो जाती है लेकिन एक दशक पहले के 47 फीसदी अनुपात को देखते हुए यह बड़ी गिरावट कही जाएगी।

दूसरी अच्छी खबर मॉन्स्टर वेतन सूचकांक (एमएसआई) के रूप में सामने आई। इसके मुताबिक भारत में पुरुष एवं महिला कर्मचारियों को मिलने वाले वेतन का अंतर वर्ष 2017 में पांच फीसदी तक कम हुआ जबकि 2016 में यह फासला 24.8 फीसदी तक था।

दोनों ही खबरें काफी अच्छी हैं और उनमें उम्मीद की किरण भी नजर आती है। लेकिन गहराई से देखने पर तस्वीर थोड़ी धुंधली हो जाती है। मसलन, एमएसआई रिपोर्ट में कहा गया है कि अनुभवी कर्मचारियों के मामले में पुरुष एवं महिला के आधार पर वेतन का फर्क काफी बढ़ चुका है। हालत यह है कि 11 साल से अधिक अनुभव रखने वाले पुरुष एवं महिला कर्मचारियों के वेतन में 25 फीसदी का अंतर देखा जाता है।

दो साल तक का अनुभव रखने वाले पुरुष कर्मचारी समकक्ष महिला कर्मचारियों की तुलना में 7.8 फीसदी अधिक वेतन पाते हैं और छह से 10 साल तक का अनुभव रखने वाले कर्मचारियों के मामले में यह अंतर 15.3 फीसदी का है। लैंगिक आधार पर होने वाले इस भेदभाव की वजह से पुरुष अपने घरों से बाहर निकलकर वेतनभोगी कर्मचारी बनना पसंद करते हैं जबकि महिलाओं के लिए यह घरों के भीतर रहकर घरेलू कामकाज करने का कारक बन सकता है।

जहां तक नाबालिग लड़कियों की शादी में गिरावट का जिक्र करने वाली यूनिसेफ रिपोर्ट का सवाल है तो वह विश्व आर्थिक मंच की 'वैश्विक लिंग-अंतराल रिपोर्ट 2017' की तुलना में हमें जमीनी सच्चाई से परे ले जाती है। विश्व आर्थिक मंच की रिपोर्ट में भारत को 144 देशों में से 108वें स्थान पर रखा गया है जबकि 2016 में भारत लिंग के आधार पर फर्क के मामले में 87वें स्थान पर मौजूद था।

कुल श्रमशक्ति में महिलाओं की भागीदारी के मामले में भारत दक्षिण एशिया में पाकिस्तान के बाद सबसे खराब स्थिति में है। अर्थव्यवस्था बढने से महिलाओं के लिए अतिरिक्त रोजगार अवसर सृजित होने के बजाय भारत में महिला रोजगार पीछे की तरफ जा रहा है। वर्ष 2017 में 15 साल से अधिक उम्र वाली श्रमशक्ति में महिलाओं की हिस्सेदारी 27 फीसदी पर आ गई जबकि दो दशक पहले **यह अनुपात 35 फीसदी हुआ करता था।**

राष्ट्रीय नमूना सर्वे (एनएसएस) के आंकड़ों से पता चलता है कि श्रमशक्ति में 25-54 वर्ष उम्र वाली महिलाओं की भागीदारी शहरी इलाकों में 26-28 फीसदी के दायरे में स्थिर हो गई है जबकि ग्रामीण इलाकों में इस समूह की हिस्सेदारी 2011 में घटकर 44 फीसदी हो गई थी जो 1987 में 57 फीसदी हुआ करती थी। विभिन्न उम्र समूहों या विभिन्न सर्वेक्षणों में कमोबेश यही कहानी सामने आ रही है।

भारत सरकार की वार्षिक आर्थिक समीक्षा में भी मां-बाप के मिसाल के तौर पर एक हिंदू सवर्ण शहरी महिला स्त्री होने का भेद तो झेलती है, पर उन भेदभावों को नहीं झेलती, जो एक दलित या ओबीसी या ग्रामीण महिला झेलती है। निचली जातियों की महिलाएं एक साथ पुरुष सत्ता और जाति का बोझ झेलती हैं। ग्रामीण या कम पढ़ी-लिखी या गरीब महिलाओं के मामले में यह बोझ कई गुना बढ़ जाता है। संयुक्त राष्ट्र के आंकड़ों के मुताबिक, भारत में दलित महिलाएं सवर्ण महिलाओं से 14.6 साल पहले ही मर जाती हैं। यदि जनगणना के जरिये ओबीसी के आंकड़े जुटाए जाएं, तो ऐसे ही परिणाम आ सकते हैं। मुमकिन है कि ओबीसी की स्थिति दलितों से थोड़ी कम भयावह हो। अल्पसंख्यक महिलाओं की स्थिति भी बुरी है।

ऐसी आशंका है कि इन विभाजनों का ख्याल रखे बगैर यदि महिला आरक्षण विधेयक पारित किया जाता है, तो लोकसभा और विधानसभा में महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों पर ज्यादातर शहरी सवर्ण अमीर महिलाएं आ जाएंगी, क्योंकि निचली और मझौली जाति की महिलाएं अभी उस स्तर पर नहीं पहुंची हैं कि शहरी सवर्ण महिलाओं के मुकाबले में जीत पाएं। हालांकि इसकी पुष्टि के लिए कोई आंकड़ा या तथ्य नहीं है, पर यह आशंका कायम है। एक आशंका यह भी है कि महिला आरक्षण से लोकसभा और विधानसभाओं का सामाजिक चरित्र बदल जाएगा। 1990 के बाद से भारतीय राजनीति में पिछड़ी जातियों के उभार के बाद लोकसभा और विधानसभाएं ज्यादा समावेशी बनी हैं। इससे भारतीय लोकतंत्र में विविधता आई है। कुछ लोगों को आशंका है कि महिला आरक्षण विधेयक का मौजूद स्वरूप इस बदलाव को खारिज कर देगा और लोकसभा और विधानसभाओं में सवर्ण वर्चस्व कायम हो जाएगा।

पर ये सब सिर्फ आशंकाएं हैं। अगर वर्तमान सरकार अपने कार्यकाल के आखिरी वर्ष में महिला आरक्षण विधेयक पारित करना चाहती है, तो उसे एक नया विधेयक संसद में लाना चाहिए। इस विधेयक में उन आशंकाओं का समाधान करने की कोशिश होनी चाहिए, जिनकी वजह से कुछ दल इसका विरोध कर रहे हैं। जरूरी नहीं कि सरकार विरोधियों की बात मान ही ले, पर सरकार को सभी दलों की राय लेकर आम सहमति बनानी चाहिए। आम सहमति से अगर यह कानून बना, तो सबसे अच्छा होगा। लेकिन आम सहमति को महिला आरक्षण न देने का बहाना नहीं बनाना चाहिए। इस मामले में सबसे जरूरी है कि सरकार अपना पक्ष रखे और उस पर राष्ट्रीय बहस हो।

लोकसभा में सत्ताधारी गठबंधन को पूर्ण बहुमत हासिल है, यानी नरेंद्र मोदी सरकार को वह दिक्कत नहीं है, जो मनमोहन सरकार को थी। मनमोहन सरकार में कांग्रेस का अपना बहुमत नहीं था और कई समर्थक दल महिला आरक्षण विधेयक को मौजूदा रूप में पारित करने के लिए तैयार नहीं थे। लेकिन मौजूदा लोकसभा में न सिर्फ सत्ताधारी गठबंधन का बहुमत है, बल्कि सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी भी महिला आरक्षण के समर्थन में है। इसके अलावा वामपंथी दल भी महिला आरक्षण लागू करना चाहते हैं। ऐसे में यह सरकार पर है कि वह महिला आरक्षण के लिए संविधान संशोधन बिल लाए। इसके बिना भारत में संसद और विधानसभाओं में महिलाओं का समुचित प्रतिनिधित्व संभव नहीं दिखता। इंटर पार्लियामेंटरी यूनियन की रिपोर्ट के मुताबिक, संसद में महिलाओं के प्रतिनिधित्व के मामले में दुनिया के 193 देशों में भारत का स्थान 148वां है। भारत इस मामले में पाकिस्तान, बांग्लादेश और नेपाल से भी पीछे है। क्या वर्तमान सरकार महिला आरक्षण बिल संसद में पारित कराने की कोशिश करेगी?

GS World
Committed To Excellence

बीच 'बेटे को प्राथमिकता' संबंधी धारणा का जिक्र किया गया है। इसके मुताबिक भारतीय दंपती अपने परिवार में बेटों की मनचाही संख्या पूरी होने तक बच्चे पैदा करना जारी रखते हैं। आर्थिक समीक्षा के मुताबिक भारत में 25 साल तक की उम्र वाली करीब 2.1 करोड़ अनचाही लड़कियां हैं। इसकी वजह यह है कि उनके माता-पिता ने बेटे की चाह में अनचाही बेटियों को पैदा करना जारी रखा।

भले ही सर्वे में कहा गया है कि पिछले डेढ़ दशक में भारत की स्थिति 17 में से 14 मानदंडों में बेहतर हुई है। महिला सशक्तीकरण की स्थिति का जायजा लेने के लिए ये मानदंड तय किए गए हैं। सच तो यह है कि लड़कियों की तुलना में लड़कों को तरजीह देने वाले सामाजिक-सांस्कृतिक मानक, महिलाओं की आवाजाही पर रोक लगाने वाले पितृसत्तात्मक मूल्य और महिलाओं को काम करने से रोकने वाली लैंगिक सोच के चलते भारत में लिंग के आधार पर भेदभाव को बढ़ावा मिलता है।

यह एक ऐसी समस्या है जो भारत के कॉर्पोरेट जगत में शीर्ष स्तर पर भी देखी जाती है। कंपनियां भले ही इसे स्वीकार न करें लेकिन सच तो यही है कि वे महिलाओं को नौकरी देने पर लगने वाली लागत का पूरा ध्यान रखती हैं। खास बात यह है कि पुरुष कर्मचारियों को नौकरी देते समय कंपनियां लागत पर इस कदर ध्यान नहीं देती हैं। इसकी मूल वजह वह मान्यता है कि अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियां निभाने के लिए महिलाएं बीच में ही नौकरी छोड़ देंगी।

कंपनियों का मानना है कि बीच में ही नौकरी छोडने से इन महिला कर्मचारियों के प्रशिक्षण पर किए गए निवेश का उन्हें पूरा प्रतिफल नहीं मिल पाता है। इतना ही नहीं, कंपनी को उस महिला कर्मचारी की जगह नए कर्मचारी को नौकरी पर रखने का खर्च भी उठाना पड़ता है। कंपनियां इस प्रवृत्ति को 'मॉमी ट्रैक' कहकर पुकारती हैं।

यही कारण है कि बच्चे के जन्म एवं देखभाल के लिए स्वीकृत मातृत्व अवकाश की अवधि समाप्त होने के बाद जब बढिया प्रदर्शन करने वाली महिला कर्मचारी भी दोबारा काम पर लौटना चाहती हैं तो उनकी राह कहीं अधिक दुश्वार हो चुकी होती है। दरअसल उनके अनुभव के हिसाब से नौकरियां कम होती हैं और उन्हें मिलने वाला वेतन भी तुलनात्मक रूप से कम होता है।

GS World टीम...

अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस

प्रत्येक वर्ष 8 मार्च को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस का आयोजन किया जाता है।

सर्वप्रथम वर्ष 1909 में अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस का आयोजन किया गया था। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा वर्ष 1975 से इसे मनाया जाने लगा है।

विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के प्रति सम्मान, प्रशंसा और प्यार को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से इस दिन को महिलाओं के आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक उपलब्धियों के उत्सव के तौर पर मनाया जाता है।

क्या है "हैशटैग मी टू"?

"हैशटैग मी टू" नामक इस मुहिम का दुनिया पर कितना असर होगा, यह तो वक्त ही बताएगा। इस अभियान के माध्यम से दुनिया भर की महिलाओं द्वारा अपने साथ हुई दुर्घटनाओं के विषय में खुलकर बात की जा रही है।

इस अभियान की सफलता की कहानी इस बात से साबित होती है कि इसे प्रतिष्ठित टाइम मैगजीन द्वारा वर्ष 2017 के पर्सन ऑफ द ईयर से सम्मानित किया गया है।

यह अभियान उन महिलाओं के लिये एक बड़ा संबल बनकर उभरा है, जिन्होंने यौन शोषण के विरुद्ध चुप्पी तोड़ते हुए खुलकर बात करने का साहस दिखाया है।

क्या है "हैशटैग लहू का लगान" ?

देश भर में जीएसटी लागू होने के बाद सैनेटरी पैड पर 12 फीसदी टैक्स अधिरोपित कर दिया गया। इसी 12 फीसदी जीएसटी के विरोध में सोशल मीडिया पर एक नया अभियान श्लहू का लगानश शुरू किया गया।

इस अभियान के अंतर्गत महिलाओं द्वारा सैनेटरी पैड पर लगने वाले जीएसटी को हटाने की मांग की जा रही है।

क्या है "हैशटैग मेरी रात मेरी सड़क"?

पिछले दिनों महिला सुरक्षा के संबंध में सोशल मीडिया पर एक और अभियान शुरू किया गया है।

इस अभियान के तहत 12 अगस्त, 2017 को बड़ी संख्या में महिलाओं द्वारा सड़कों पर उतर कर विरोध प्रकट किया गया।

क्या है "हैशटैग इक्वलपे (मुनंसचंल)"?

चीन में बीबीसी की संपादक कैरी ग्रेसी द्वारा संस्थान में पुरुष और महिला कर्मचारियों के बीच वेतन असमानता के विरोध में पद से इस्तीफा दे दिया गया।

इस कैंपेन का इतना प्रभाव हुआ कि बीबीसी के कुछ संपादकों द्वारा अपने वेतन में कटौती की गई।

अन्य आँकड़ें

मॉन्स्टर सेलरी इंडेक्स की ताजा रिपोर्ट के अनुस्सर, भारत में महिलाओं को पुरुषों की तुलना में 20 फीसद कम वेतन मिलता है।

वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम के वैश्विक लैंगिक भेद सूचकांक 2017 के अंतर्गत विश्व के 144 देशों की सूची में भारत को 108वां स्थान प्राप्त हुआ।

वर्ष 2016 की तुलना में यह 21 स्थान नीचे आ गया।

क्या है "हैशटैग वुमन फॉर 33"?

5 मार्च को कॉन्ग्रेस पार्टी की महिला विंग द्वारा इस कैंपेन की शुरुआत की गई। इस अभियान के तहत संसद में महिलाओं के लिये 33 फीसदी आरक्षण की मांग की जा रही है।

वर्तमान में संसद में महिलाओं का प्रतिनिधित्व केवल 11 फीसदी ही है।

संभावित प्रश्न

प्रश्न. किसी समाज की सभ्यता का पैमाना स्त्री के प्रति नजरिये से तय होता है। देश में महिलाओं के लिए लिंग भेद, समता के अधिकार, राजनितिक अधिकार जैसे मुद्दे में व्याप्त समस्याओं को दूर करने के लिए वर्त्तमान सरकार द्वारा जारी किये गये पहलों की चर्चा कीजिये।

GS World

Committed To Excellence